प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-११०००६

भीलों के बीच बीस वर्ष

डा॰ शोभनाथ पाठक



प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६
मुद्रक : संजय प्रिंटर्स, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२
प्रथम संस्करण : १९८३ / सर्वाधिकार सुरक्षित / मूल्य : चालीस रुपये

BHEELON KE BEECH BEES VARSH
by Dr Shobh Nath Pathak Rs. 40 00

प्राक्कथन

अपने जीवन का सर्वाधिक गरिमामयी समय मैंने भीलों के बीच व्यतीत किया है। लगभग इक्कीस वर्ष की उम्र से इकतालीस वर्ष की उम्र तक इनके बीच घुल-मिल कर रहा हूं, वह भी पावन संबंध गुरु और शिष्य की गरिमा का। तात्पर्य यह कि बीस वर्षों तक शिक्षक के रूप में मैं भीलो को पढ़ाता रहा, जो ८५ प्रतिशत की आबादी वाला आदिवासी क्षेत्र है। यही नहीं वरन् यह क्षेत्र एशिया में अपराध (हत्या) के मामलो मे अग्रगण्य होते हुए भी मेरे आकर्षण का केन्द्र रहा है।

सर्वप्रथम मेरा सपर्क धार जिले (म० प्र०) के भील-भिलालों से हुआ, जहा मैं अपने अग्रज, जो पुलिस इन्सपेक्टर थे, के साथ गावो मे जाता रहता। गावों में जब भी वे दौरे पर जाते, मैं उनके साथ-साथ जाता व बारीकी से इनके रीति-रिवाज-नृत्य-सगीत, बोल-चाल को परखता। इसी प्रकार भगोरिया व अन्य मेलों मे भाई साहब के साथ जब भी जाने का अवसर मिलता, मुझे अत्यधिक आनंद की अनुभूति होती। धार, कुक्षी, बाग, आदि क्षेत्रो के भील-भिलालों से सपर्क की अनुभूति के साथ ही खरगोन मे भी भाई साहब के साथ इनमें घुलता-मिलता रहा।

सौभाग्य से मुझे सेवा का प्रथम अवसर भी झाबुआ के आलीराजपुर में मिला जहां भीलों की आपराधिक प्रवृत्तिया; एशिया स्तर पर सर्वाधिक है। आलीराजपुर का सोण्डवा क्षेत्र अत्यधिक खतरनाक माना जाता है, किंतु वहा भी मैं पहुचकर इन भीलों के स्वागत-सत्कारसे अत्यधिक प्रभावित हुआ।

रामायण, महाभारत की कथाएं पढ चुका था। जिसमे शबरी की भव्य-भक्ति *और एकलव्य की असीम आस्था की अनुभूति का अंश इन भीलों में मुझे झांकता* हुआ दिखाई पड़ा। अतः मैंने भीलो मे ही काम करने का निश्चय किया। अतत. शिक्षक के रूप में मेरी नियुक्ति झाबुआ जिले के मेघनगर में हो गई, जहां से राजस्थान व गुजरात के भीलो से भी अच्छा सपर्क हो सका। यह स्थान मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात की सीमा पर है, इसीलिए मुझे भीली जीवन मे घुल-मिलकर रहने का सुअवसर मिला।

अध्यापकीय कार्य मे इनसे और भी आत्मीयता बढ़ी, क्योकि भील लड़के-लड़किया मेरे व्यवहार से बेहद प्रभावित थे। प्रभावित होने का एक और भी कारण था कि आदिवासी छात्रावास मे भी मैं कभी-कभी लड़कों की कठिनाइयों को सुलझाने पहुच जाता था। परीक्षा-समय में तो प्रायः आदिवासी लड़के मुझे सायकाल छात्रावास मे बुलाते और कठिन प्रश्नों को पूछते। उनके व्यवहार से मैं इतना प्रभावित रहता कि कभी-कभी छुट्टी के दिनों में भी उन्हें, आदिवासी छात्रावास मे स्वयं जाकर कठिन प्रश्नो को समझा देता।

ये आदिवासी भील लड़के कभी-कभी मुझे अपने घर भी ले जाते जो बीहड़ वनों मे बहुत दूरी पर पडता। मैं उनके घर की स्थिति, दैनिक जीवन-यापन की प्रक्रिया, संस्कृति, गीत, व तत्संबधी अनेक तथ्यों को बडी बारीकी से पूछता-परखता और मेरी सहानुभूति का सम्बल मेरे विद्यार्थियों को खूब मिलता। गुरु-शिष्य की पावनता की परख तो मैं बीस वर्ष इनके बीच रहकर करता ही रहा; किंतु वह दृश्य सम्भवतः मुझे जीवन भर नही भूलेगा, जिस दिन मुझे विदाई देते समय मेरा पूरा विद्यार्थी-परिवार सिसक-सिसक कर, फूट-फूटकर रोने लगा था। ऐसा मार्मिक दृश्य मैंने कभी नही देखा था। मैं भी उस दिन इतना रोया कि एक शब्द भी मेरे मुख से निकलना कठिन हो गया। छोटे-छोटे बच्चे स्टेशन तक मेरे साथ रोते-रोते आये। इस मार्मिक प्रसंग और आत्मीयता की असीमता को आंकते कलम रुक जा रही है और नेत्र पुनः सजल हो रहे हैं। कितनी आस्था, कितनी श्रद्धा, कितना प्यार गुरु के प्रति···

भीलों का भोलापन कितना पावन और महिमामयी है इसकी अनुभूति मुझे जनगणना और चुनावो के कार्य मे हुई। सुदूर ग्रामीण अचल की बीहड़ अमराइयों में जहां पहुंचना बहुत कठिन होता है, वहां भी इन अवसरो पर मुझे जाने का सौभाग्य मिला। जनगणना कार्य में घर-घर जाकर जहा मैं भीलों का पूरा विवरण लेता, वही चुनाव के कार्य में इनके व्यवहार, रहन-सहन से पूर्ण परिचित हो, संतुष्टि होती कि कितनी विनम्रता, सेवा-सत्कार, अतिथि-आत्मीयता इनमें होती है।

भीलों के विषय में लिखने की असीम साध संजोए, उस अनुभूति को अभिव्यक्त करने की आतुरता को उड़ेलने का सुअवसर 'एकलव्य' काव्य में मिला। एकलव्य की आस्था का जो सम्बल मुझे मिला, उसे मैंने अपनी इस कृति मे अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है जो राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। भीलो के जीवन पर बहुत कुछ लिखने की आतुरता है किंतु···

इन आदिवासियों (भीलो) की सांस्कृतिक, साहित्यिक, पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक महत्ता का गंभीर अध्ययन अनेक अद्भुत तथ्य उजागर करने मे सक्षम है, पर आवश्यकता है, इन तथ्यों के अतल मे पैठकर

पहुंचाने की। इस ग्रंथ में बहुत कुछ समाविष्ट करने की मेरी प्रबल इच्छा थी, किंतु वांछित सामग्री के अभाव में इतना ही देकर संतोष कर रहा हूं।

हां, भील-विषयक जितनी भी संक्षिप्त सामग्री का समावेश मैं इस ग्रंथ में कर पाया हूं उसके लिए विशेष सहयोग डॉ० शकील रजा (ए० आई० जी०), तत्कालीन पुलिस अधीक्षक झाबुआ का मिला है। जब वे झाबुआ मे पुलिस अधीक्षक थे, तब भी भीलो के बहुमुखी विकास विषयक प्रयास वे करते रहते व मुझसे भी चर्चाएं करते रहते। भीलों की सामूहिक बस्ती का प्रस्ताव तथा तीर-धनुष पर पाबंदी आदि सामाजिक सुधार के प्रयास डॉ० शकील रजा द्वारा किये गये। ऋण निवारण कार्यक्रम मे भी उनसे मेरा संपर्क रहा। यही नहीं, साप्ताहिक हिन्दुस्तान का झाबुआ विशेषांक भी निकला जिससे देश की जनता झाबुआ के भीलों के विषय मे जान सके।

डॉ० बी० डी० शर्मा (सचिव, म० प्र०) का हृदय से आभारी हूं जिनकी प्रेरणा से आदिवासियों पर सृजन का प्रसून प्रस्फुटित हुआ है।

इस ग्रंथ के लिखने में मुझे साहित्यिक सम्बल डॉ० नेमीचन्द जैन की कृतियों में मिला है जो मेरे शुभेच्छु सहयोगी है। इनके गंभीर अध्ययन का लाभ आदिवासियों को मिले, इस ओर भी ध्यान अपेक्षित है। अन्य विद्वानों की कृतियों से जो मुझे इस ग्रंथ के सृजन में सहायता मिली है उनके प्रति जितना भी आभार व्यक्त करूं, थोड़ा है।

झाबुआ में विशिष्ट सहयोगियों से जो प्रेरणा मुझे मिलती रही है उनमें प्रमुख हैं श्री मोतीलाल जायसवाल, श्री जयंतीलाल पटेल, श्री गेंदालाल जैन तथा हमारे प्राचार्य श्री आर० एन० सिंह। चित्रों के लिए श्री पारिख, श्री अशोक पागनीस के प्रति प्रशसनीय भाव से आभारी हूं।

इस ग्रंथ की सामग्री एकत्रित करते समय ही अचानक हमारे झाबुआ और रतलाम क्षेत्र के सांसद श्री दिलीप सिंह भूरिया से चर्चा हुई। उन्होंने मेरी जिज्ञासा को परख, प्रोत्साहन की प्रेरणा देते हुए पूर्ण सहयोग का आश्वासन तो दिया ही, साथ ही पर्याप्त पत्रिकाएं, भीलों के चित्र आदि देकर ग्रंथ को सुन्दर-सुघर-सलोना बनाने में असीम सहयोग भी दिया।

हमारे मेघनगर के विधायक तथा मध्य प्रदेश शासन के संसदीय सचिव श्री कांतीलाल भूरिया का भी आभारी हूं जिन्होंने इस ग्रंथ के प्रणयन में सहयोग प्रदान किये हैं।

नीर-क्षीर-विवेकी प्रिय पाठकों को 'भील' जाति के जीवन की परख से संतुष्टि होगी, यही मेरी सफलता का द्योतक है।

(शोभनाथ पाठक)

श्यामला हिल्स
भोपाल (म० प्र०)



भूमिका

डॉ० शोभनाथ पाठक द्वारा लिखित पुस्तक—'भीलो के बीच बीस वर्ष' पढकर मुझे असीम सतुष्टि हुई। 'भील' अत्यधिक पिछडी हुई जाति है। भारतीय जन-जातियो मे 'भील' जनसख्या की दृष्टि से दूसरे स्थान पर आते है। मध्य-प्रदेश मे भी गोडों के बाद भीलो की जनसंख्या अधिक है, किन्तु भीलबहुल जिला झाबुआ अत्यधिक पिछड़ा हुआ है। जहां ८५ प्रतिशत आदिवासी निवास करते हैं।

भारतीय संस्कृति के सवार मे भीलों का अभूतपूर्व योगदान, एक ऐसा कीर्तिमान स्थापित कर चुका है, जिसकी महत्ता को आकना आसान नही। महर्षि वाल्मीकि भी भील थे, जो रत्नाकर डाकू से 'आदिकवि' की महत्ता से मडित हुए। राम साहित्य की विश्वव्यापकता वाल्मीकि की ही देन है। वाल्मीकि को यदि भारत का प्रथम राष्ट्रकवि कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नही।

राम-भक्त शवरी की सराहना में सभी उपमान फीके पड़ जाते हैं, जब भगवान राम की भक्ति भावना से अभिभूत शवरी, उन्हें अपने जूठे बेर खिलाने में भी नि.सकोच असीम आनन्द की अनुभूति करती हुई श्रद्धा-भक्ति की पराकाष्ठा को भी पार कर जाती है।

महाभारत कथा मे 'एकलव्य' की गुरु-भक्ति की गरिमा का जितना भी गुण-गान किया जाए, थोड़ा है। एकलव्य ने अपने अगूठे का दान कर विश्व वाङ्मय मे अपनी वरीयता का डका बजाकर, श्रम-साधना, लगन-लालसा का अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है, जो अनुपम, अद्वितीय है।

पौरुष की पराकाष्ठा मे भीलो ने हल्दी-घाटी के मैदान में महाराणा प्रताप

ुओं के दांत
म, अद्वितीय

और अनुकरणीय है, कि अरावली पर्वत श्रेणियों से शर-संधान करते हुए भीलों ने शत्रुओं के शोणित से मातृभूमि का अभिषेक किया, स्वयं को मातृभूमि की ममता पर अर्पित कर दिया, किन्तु कभी आन पर आंच नहीं आने दिये। महाराणा प्रताप के साथ भीलों का अक्षुण्ण पौरुष, पूर्ण त्याग-बलिदान भारतीय इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

इसी अतीत की परम्परा को परिष्कृत, पुष्ट व परिमार्जित करने में भील आज भी तन-मन-धन से जुटे हुए हैं किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के आलोक में जहां आज समाज का विशिष्ट वर्ग आगे बढ़ता जा रहा है। वहीं अरण्य वन-बीहड़ों में निवास करने वाला यह आदिवासी वर्ग पिछड़ा हुआ है। शासकीय प्रयत्नों से जहां आदिवासी उन्नति-पथ पर अग्रसर हैं वहीं वे उस लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये हैं, जहां तक आशा थी। इस प्रगति-पथ पर अनेक व्यवधान हैं जिनका प्रशस्त होना आवश्यक है।

डॉ० पाठक इस पुस्तक में भीलों-विषयक समस्त तथ्यों को समष्टि रूप में समाविष्ट कर तत्संबंधी तथ्यों को बड़ी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किये हैं।

भीलों की उत्पत्ति-विषयक शोध सामग्री तथा विदेशी विद्वानों द्वारा अध्ययन का सम्बल शोधार्थियों के लिए आलोक स्तम्भ का कार्य करेगा। भीलों की संस्कृति शिक्षा और आधुनिक विकास का जहां सांगोपांग विवेचन ग्रन्थ में किया गया है, वहीं भीलों की अपराध प्रवृत्ति के परिष्कार, ऋणग्रस्तता से मुक्ति, तथा बहुमुखी विकास की ओर उन्मुख होने का आह्वान, इन्हें भी राष्ट्र की प्रगति में कंधे से कंधा मिलाकर बढ़ने की प्रेरणा देने में सक्षम है।

'भीलों के बीच बीस वर्ष' पुस्तक का नाम रखकर लेखक द्वारा अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति का जो परिमार्जित रूप प्रदान किया गया है वह वास्तव में सराहनीय है। लेखक द्वारा इन आदिवासियों के बीच बीस वर्ष रहकर जो सेवा का अद्वितीय कार्य किया गया है, वह प्रशंसनीय है। यही कारण है कि भीलों के समस्त जीवन से परिचित कराने में इस पुस्तक की अक्षुण्ण उपयोगिता को आंकना आसान नहीं। पुस्तक में सजीवता, यथार्थता, उद्बोधन तथा आदिवासियों के उत्थान का अनुपम समन्वय है।

डॉ० पाठक के श्रम तथा आदिवासियों की सेवा में संलग्न रहने की मैं सराहना करता हूं तथा पुस्तक को समस्त दृष्टि से उस उत्कृष्ट दर्पण की उपमा से अलंकृत करता हूं जिससे 'भील' जीवन की समस्त सामग्री प्रतिबिम्बित होती है। पाठकों को पुस्तक से 'भील' जाति विषयक समस्त जानकारी प्राप्त होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

मैं लेखक को अपने आदिवासी क्षेत्र से एक सांसद के नाते साधुवाद देता हूं, और आशा करता हूं कि डॉ० पाठक आदिवासियों विषयक और तथ्य उजागर कर उनके बहुमुखी विकास में सहयोगी बनेंगे।

धन्यवाद !

दिलीपसिंह भूरिया



M.R./388
रेल मंत्री, भारत
नई दिल्ली-110001
Minister for Railways
India
New Delhi-110001

19-7-82

संदेश

भीलों के सर्वांगीण जीवन पर 'भील जाति का उद्भव एवं विकास' नामक शोध ग्रंथ लिखा जा रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

सामान्यतः नगरीय सभ्यता के चकाचौंध के कारण ग्रामीण अंचलों और फिर भीलों सरीखे आदिवासियों के जीवन की वास्तविक झांकी प्रायः देखने को नहीं मिलती। जो कुछ मिलता भी है, वह आत्म-अनुभूत कम होता है। हिन्दी मे आदिवासी जीवन पर शोधात्मक रचना की बड़ी आवश्यकता है।

आपके ग्रंथ से यह आवश्यकता पूरी हो सकेगी, ऐसा मेरा भरोसा है।

प्रकाश चन्द सेठी

भीलों का उद्भव और विकास

'भील' भारतीय समाज के संगठन-समन्वय-संवार व सर्वांगीण विकास की वह दूसरी[1] कड़ी हैं, जो समष्टिमयी सुदृढ़ता के साथ, सांस्कृतिक सम्बल का कीर्तिमान स्थापित कर, अतीत से अब तक राष्ट्र को गरिमा प्रदान करते हुए अचल, अथक और अटल है। किसी भी राष्ट्र को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए वहां के सामाजिक समन्वय की कड़ी ही उत्तरदायी होती है। यदि संगठन की एक भी कड़ी कमजोर है, तो समाज को विखरते, टूटते देर नहीं लगती। इसी आधार पर भीलों की भूमिका को अतीत से अब तक आकें तो ज्ञात होगा कि आदिकवि वाल्मीकि[2] की वरीयता में जहां भील जाति की गरिमा समायी हुई है, वही रामभक्त शबरी की भक्ति-भावना का जितना भी बखान किया जाए, थोड़ा है। शिष्यत्व की तुला पर गुरु से भी गुरुतर एकलव्य का आदर्श विश्व वाङ्मय में अनूठा है। इतिहास की ये विभूतियां भील की भव्यतम गरिमा से मंडित भारत को गौरवान्वित किये हुए अजर-अमर हैं।

भारतीय अतीत को उजागर करने में भील और भीलांगनाओं की अद्वितीय भूमिका को आंकना आसान नही है। श्रीमती आई०

---

१. भारतीय जन जातियों में जनसंख्या के आधार पर 'भीलों' का स्थान भारत मे दूसरा है अर्थात् ३८.३८। धर्मयुग, २ दिसम्बर, १९७३ (प्रथम स्थान गोंड़ों का है—३९.९१, वही)।

२. (क) Bhils......by S. L. Doshi, P. 6.

(ख) मानस भारती, अक्टूबर, १९८१।

(ग) दत्त महाराजकृत रामायण के गीत क्र० २ में वालिया (वाल्मीकि) का वर्णन।

(घ) भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचंद जैन।

सुच्कोव के अनुसार तो "भीलों के नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन का भारत के और पूरे एशिया के लोगों की उत्पत्ति का निश्चय करने की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है।"[1]



भीलों की भव्य गरिमा को थहाने की दृष्टि से ही सोवियत-विज्ञान अकादमी की मानव जाति विज्ञान संस्था की सदस्या आईरीना सेमास्को ने अपने प्रकाशित ग्रंथ 'भील' मे भील जाति के उद्‌भव और विकास से लेकर रहन-सहन, संस्कृति-शिक्षा आदि का विस्तृत विवरण दिया है। इस ग्रंथ में लेखिका ने भारतीय व

१. भीलो पर रूसी शोध-ग्रंथ, आई० सुच्कोव, नई दुनिया ३-१०-७५।

पश्चिमी विद्वानों के तत्संबंधी विशेष तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उनका विचार है कि गुणाढ्य को विख्यात कृति 'बृहत्कथा'[1] में इसका प्रथम बार प्रयोग हुआ है।[2]

तथ्यत: अतीत के आलोक में 'भील' शब्द की महत्ता को विविध कसौटियों पर कसकर परखें तो पता चलता है कि वैदिक काल मे भी इनकी वरीयता अक्षुण्ण थी। 'पंचजना'[3] में जहां इनकी परख 'निषाद' के रूप में की जाती है, वहीं 'अनास'[4] शब्द भी ऋग्वेद मे इस जाति के विषय में आलोक प्रकीर्ण करता है। भीलबहुल क्षेत्र झाबुआ में 'अनास' नाम की नदी भी आज सतत प्रवाहित होते हुए अतीत के इतिहास को उलटने हेतु आतुर है। इस तथ्य पर विशेष शोध अपेक्षित है।

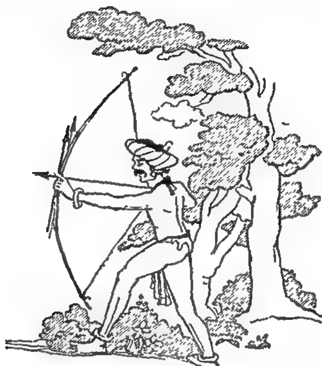
झाबुआ के भीलों के गीतों में आरोह-अवरोह की ध्वनियां चांदनी रात में जो मुझे मुग्ध करती रही हैं, उनमें वैदिक मंत्रों के आरोह-अवरोह का आभास बरबस ही उस अतीत की ओर टटोलने को विवश कर देता है। भीली शब्दों को भाषा विज्ञान की कसौटी पर भी यदि परखा जाए तो संस्कृत शब्दों का साम्य उफनने लगता है। 'रमण' शब्द तो प्राय: भील अपने नृत्य में प्रयुक्त करते ही हैं (रमि रह्यो)।

भीलों का प्रमुख आयुध तीर है। तीर-कमान को ये अपना श्रृंगार मानते हैं। तीर चलाने की कला में तो ये इतने प्रवीण होते है, कि बंदूक का निशाना भले ही चूक जाये, पर इनके तीर का निशाना नही चूकता। तीर से भेदन की कला के कारण ही इनकी व्युत्पत्ति द्राविडियन शब्द वॉ (baw) धनुष से भिद् भेदने के कारण मानी जाती है।

---

१. 'बृहत्कथा' ई० पू० प्रथम व द्वितीय शताब्दी की कृति है।
२. भील, आइरीना सेमास्को।
३. औपमन्यव आचार्य का मत है कि चार वर्ण तथा 'निषाद' मिलकर पंच जातियां है (निरुक्त ३।८) वैदिक साहित्य व 'संस्कृति' पृ० ४६० (पं०बलदेव उपाध्याय)।
४. ऋग्वेद—५-२९-१०।

'भील' शब्द संस्कृत की 'भिद्' धातु से भेदन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भील संस्कृत के 'भिल्ल' का तद्‌भव रूप है। भिल्-विल्-



भेदने धातु से सम्बद्ध है।[1] यह 'भद्र' का भी परिचायक है। 'भील' शब्द की व्युत्पत्ति 'भिद्' भिल्ल, भल्ल तथा 'भिद्' से ध्वनि परिवर्तन की प्रक्रिया से 'द'—'ल' पूरी समीकरण 'भिल्ल' होता है। द्राविणी प्राणायाम से यह 'भिद्' से 'भिल्ल' बनता है। 'भद्र' से 'भल्ल' की निष्पत्ति भी उपयुक्त है'''भिल्ल प्राचीन शब्द है और 'भील' मध्यकालीन। प्राकृत भाषा भी 'भिल्ल' शब्द से परिचित है। 'पउम चरिउ' में भिद् की जगह 'भेल्ल' आया है।[2]

एक और अवधारणा के अनुसार यह तामिली शब्द 'बील'

---

१. भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचंद जैन, पृ० ३।
२. 'वीणा' पत्रिका का अमृतोत्सव अंक।
३. भील शब्द की व्युत्पत्ति, डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन (नई दुनिया)।

(वाण) से निःसृत है।[1] वाण भीलों का प्रमुख आयुध है। इस आयुध का प्रयोग आदिकाल में भी होता था।

भीलों की भव्यता को परखने के लिए वैदिक वाङ्मय, पुराण, ब्राह्मणग्रंथ, रामायण, महाभारत तथा संस्कृत साहित्य की विशाल थाती को यहाने से नवीनतम तथ्य उजागर हो सकते है। पुरातत्व और ऐतिहासिक आलोक में भी इनकी यथार्थता को परखा जा सकता है।

भीलों के अतीत को उजागर करने वाली अनेक कथाएं संस्कृत साहित्य में परखने योग्य हैं। भागवत पुराण[2] में बताया गया है कि एक बार प्राचीन काल में राजर्षि अंग के वंश में वेन नाम का प्रतापी राजा हुआ। राजा वेन अपने धन-वैभव व शक्ति के मद में इतना उन्मत्त हो गया कि प्रजा के कल्याण की उसे सुध-बुध ही न रही। समाज में अराजकता फैल गई। डाकू-चोर व असामाजिक तत्त्वों के आतंक से प्रजा भयभीत हो गई। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। इस अशांति का आभास जब ऋषियों को हुआ तो वे इकट्ठे होकर राजा वेन को समझाने-बुझाने उसके दरबार में पहुंचे। ऋषियों ने राजा वेन को प्रजा के कष्ट से परिचित कराया, किंतु वेन ने वैभव के उन्माद में कुछ भी न सुना। उसने ऋषियों का तिरस्कार किया। स्वयं को भगवान का अवतार बताकर अपनी ही पूजा का आह्वान किया। ऋषि राजा वेन की इस अशिष्टता पर कुपित हो गये और उन्होंने शाप दे दिया। राजा वेन का प्राणान्त हो गया।

बहुत दिन व्यतीत हो गये किंतु प्रजा में अराजकता बढ़ती ही गई। ऋषियों ने प्रशासनिक आवश्यकता की अनुभूति कर राजा वेन की जांघ का मंथन किया, जिससे अचानक ही एक पुरुष प्रकट हुआ जो रंग से काला, छोटा, चपटी नाक वाला, बड़े जबड़े, तांबे के रंग जैसे केश, नेत्र लाल व शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। उस पुरुष ने

---

१. भीली हिन्दी कोश, डॉ० नेमीचंद जैन, पृ० २।
२. भागवत पुराण, स्कंद ४, अध्याय १४, श्लोक ४५।

बडी दीनता व नम्रता से हाथ जोड़कर पूछा कि मैं क्या करूं? ऋषियों ने कहा—'निषीद' (बैठ जा) इसी से वह 'निषाद' कहलाया। उसने जन्म लेते ही राजा वेन के समस्त अपराधों को अंगीकार कर लिया, अतः इसके वंशधर 'नैषाद' भी अपराधी प्रवृत्ति के पक्षधर रहे।[1]

रावर्ट शेफर ने दृढतापूर्वक 'निषादों' को भीलों का पुरखा माना है।[2] इसको पुष्टि हेतु उन्होंने टीकाकार महीधर की 'वाजसनेयी संहिता' का साक्ष्य प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार 'निषाद' तथा 'भिल्ल' शब्द तुल्यार्थ द्योतक है। निषाद वैदिक काल की जाति भी है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में 'पञ्चजनाः' (३।३७।९), 'पञ्चमानुषाः' (८।९।२), 'पञ्चकृष्टयः (२।२।१०, ३।५३।१६) 'पञ्चक्षितयः' आदि शब्दो के रूप मे हुआ है। पूर्व में बताया गया है कि कुछ विद्वान 'पञ्चजनाः' में निषादों का समावेश भी स्वीकार करते है। औपमन्यव आचार्य का तो स्पष्ट मत है कि चार वर्ण तथा 'निषाद' मिलकर पञ्चजातिया है।[3] सायणाचार्य भी इसे स्वीकार करते है।

निषाद को 'आग्नेय'[4] भी कहा गया है। इस जाति से सम्बद्ध विभिन्न बोलिया बोलने वाली जातिया सन्थाल, मुण्डा, शवर, आदि है। इन्हें 'कोल' भी कहा जाता है। निषाद अति प्राचीन जाति है। आदिकवि वाल्मीकि भी इसी से सम्बद्ध है तथा उनका प्रथम वाक्य भी क्रौंच पक्षी के वध को देखकर दया-करुणा से अभिभूत हो उफन पड़ा था—

मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

---

१. श्री भागवत सुधा-सार, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० २०५-२०६।
२. (क) 'एथ्नोग्राफी आफ एन्शिएन्ट इंडिया,' रावर्ट शेफर, पृ० २१।
(ख) धर्मयुग, १६ मार्च, १९७५।
३. निरुक्त, ३।८।
४. भारत का सांस्कृतिक इतिहास, हरिदत्त वेदालंकार, पृ० १४-१५।

हे निपाद (व्याध) ! तू अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा (जीवन, यश, स्थिति) को मत प्राप्त हो, जो तूने क्रौंच पक्षियों के युगल में से एक काममोहित (नर) को मार दिया ।

वाल्मीकि[1] स्वयं भील थे जो डाकू रत्नाकर नाम से लोगों को लूटते थे । किंतु संतों के प्रभाव से वे ऋषि हो गये और आदिकवि बन गये । यह उद्धरण विचारणीय है—

Reference to the origin of Bhils is found in the Ramayana. Valmiki the celebrated author of the epic, was himself a Bhil named Valia.[2]

एकलव्य भी भील ही था जिसकी गुरु-आस्था जगत् प्रसिद्ध है । निपाद भीलों के पुरखे है, इस बात को एकलव्य विपयक महाभारत का यह उद्धरण भी पुष्ट करता है—

'एकदा निपादस्य हिरण्यधनुपः सुतः एकलव्यो रणशिक्षामध्येतुं द्रोणं प्राप्तः । किन्तु नैपादिरिति—चिन्तयित्वा द्रोणो न तं प्रत्यगृह्णदवदच्च—

शिष्योऽसि मम नैपादे प्रयोगे बलवत्तरः ।
निवर्तस्व गृहमेव अनुज्ञातोऽसि नित्यशः ॥

एकलव्य स्वयं अपना परिचय निपादराज के पुत्र रूप में देता है—

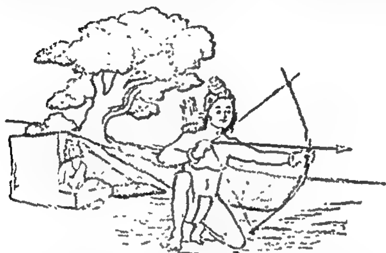
निषादाधिपतेर्वीर ! हिरण्यधनुपः सुतम् ।
द्रोणशिष्यं च मां वित्त, धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥

निपादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करना चाहता है । किन्तु वह निषाद है इसलिए द्रोणाचार्य अस्वीकार कर देते हैं । अंततः द्रोणाचार्य की मिट्टी की

---

१. (क) वाल्मीकि का पूर्व नाम रत्नाकर [illegible] ।
   (ख) दत्त महाराज की रामायन, [illegible] (वाल्मीकि) [illegible] जीवन का वर्णन है ([illegible]) ।
   (ग) भील्स…डॉ० एस० [illegible]
२. Bhils—Between [illegible] and [illegible] synthesis—By. S. L. [illegible]

प्रतिमा बनाकर एकलव्य उसी पर अपनी असीम आस्था उड़ेल, धनुर्विद्या में पारंगत हो जाता है तथा अपनी आस्था का कीर्तिमान स्थापित करते हुए गुरुदक्षिणा में दाहिने हाथ का अंगूठा दे देता है।



भीलों की गरिमा भक्ति क्षेत्र में अग्रणी शबरी जैसी साधिका के रूप में प्रकट होती है। तुलसीदास भगवान राम की सेवा में समर्पित भीलों का बखान करते नहीं अघाते। यथा—

कोल किरात भिल्ल बनवासी,
मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी।
भरि-भरि परन पुटी रचि रूरी,
कंद मूल फल अंकुर जूरी॥[1]

राम की इन वनवासियों से कितनी आत्मीयता रही है, यह विविध साहित्यिक स्रोतों से उफनकर विश्व में कीर्तिमान स्थापित कर चुका है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी इसी तथ्य को इन शब्दों में आंका है—

गृह, निषाद, शबरों तक का मन रखते हैं प्रभु कानन में।
क्या ही सरल वचन होते हैं, इनके भोले आनन में॥[2]

१. रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड १।२५०।
२. पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त।

निपाद, भील, शबर, गुह आदि शब्द जो इन वनवासियों के लिए प्रयुक्त किये गये है, वे समय के परिवर्तन के कारण, ऐतिहासिक उथल-पुथल से कुछ भिन्न भाव व्यक्त करते हैं पर वनवासी को वरीयता में जो भावना व्यक्त की गई है, उसमें वाल्मीकि, शबरी व एकलव्य का स्थान भील जाति की गरिमा को उजागर करता है। भीलो के पुरखे भले ही निपाद माने जाते हों किंतु भीलों की गरिमा का अपना अद्भुत, अनूठा और अलौकिक इतिहास है।

भीलों की प्राचीनता की परख, उत्पत्ति, आदर्श आदि भागवत पुराण, अग्नि पुराण, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, मनुस्मृति, शिव-पुराण आदि से की जा सकती है। कवि शामलदास कृत 'वीरविनोद' में भी तत्संबंधी तथ्य विस्तार के साथ दिया गया है। भीलों को शिव और पार्वती से भी सम्बद्ध बताया गया है। शिव से ही उत्पत्ति का उल्लेख भी आया है। राजपूत व पंवार जाति से भी भीलों को सम्बद्ध किया गया है। किंतु विशेप आवश्यकता इस गूढ़ विषय पर शोध करने की है।

शिवपुराण[1] मे शिव से जहां इनकी उत्पत्ति का उल्लेख है, वहीं मनुस्मृति[2] में ब्राह्मण पिता व शूद्र स्त्री के संपर्क से उत्पत्ति का विवरण दिया गया है। महाभारत में अनेक प्रसंग भीलों के आये है, जिसमें प्रमुख है—भगवान कृष्ण की मृत्यु एक भील के तीर से ही हुई। उसी शाप के कारण भील अंगूठे का प्रयोग तीर चलाने में नहीं करते।[3] इससे इनकी प्राचीनता को आका जा सकता है। 'भिल्ल' प्रजाति की प्राचीनता के विषय में श्री रांगेय राघव ने भी कहा है कि 'भिल्ल प्रजाति इतनी प्राचीन है कि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व की प्रजाति

---

१. (क) शिव पुराण ४३-१५।
(ख) संक्षिप्त शिवपुराण, चतुर्थखंड, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० ३२०-३२१।
२. मनुस्मृति संस्कृत टेक्स्ट, खण्ड १, पृ० ४८१।
३. An Account of the Bhils, by Maior Hendly—Journal of the Asiatic society of Bengal, Vol. XI, iv, P. 369, P. I. I. Calcutta 1975.

तालिका में उसकी परिगणना हुई है।"[1]

राजपूतो से भी भीलों का सामंजस्य विशेष रूप से बताया गया है। वीर विनोद के कृतिकार शामलदास[2] ने मेवाड़ के राजपूतों से भीलों के विकास का वर्णन किया है। तत्संबंधी अनेक उद्धरण भी उन्होंने प्रस्तुत किये है।

धार (म० प्र०) के पवार व परमारों से भी भीलों की विकास-कथा जुडी हुई है। सिसोदिया राजपूतों से भी इनके संबंधों पर प्रकाश पड़ता है, जबकि डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी मीणा, शक व भील सम्बन्ध की महत्ता को उजागर करते है। राठौर राजपूतों व अरावली पर्वत की कथाएं भी इनसे जुड़ी हुई है। सोलंकी, भाटी, चौहान, गेहलोत मकवाना, परमार, मिलाले, पटल्ये, तड़वी, माणकर, बारया आदि प्रजातिया इनसे सम्बद्ध है।

अनेक दन्तकथाएं भी भीलों के विषय में प्रचलित है। परी-कथाओ से भी इस सम्बन्ध को जोड़ा गया है। निनामा और मारिया की स्वर्ग विषयक कथा भी इसी से सम्बद्ध है, जो आंख और सिर के दान से पल्लवित हुई है। भगवान की विशेष कृपा व आशीर्वाद से भील धरती पर आये।[3]

धार (म० प्र०) में मोती चौहान नामक शासक से भी भील जाति का संबंध जोड़ा गया है।[4] प्रसिद्ध विद्वान टॉड ने भी राजस्थान के भीलों का गभीर अध्ययन कर ई० पू० ४०० से ई० पश्चात् १५० तक भीलों पर विशेष प्रकाश डाला है। मेजर इरस्किन का कहना है कि भील ईसा पूर्व में ही किसी पूर्वोत्तर देश से भारत में आये[5] जबकि

१. प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, श्री रागेय राघव, पृ० ४०४।
२. वीर विनोद, कवि शामलदास, भाग १, पृ०१६३।
३. Bhils, S. L. Doshi, P. 8.
४. वही।
५. Major Erskine.

कर्नल टॉड इन्हें 'वनपुत्र' कहकर भारत का मूल निवासी ही मानते हैं।[1]

इस प्रकार भीलों की गरिमा भारतीय संस्कृति में समाई हुई है। इस पर पुरातत्त्व, इतिहास व मानवशास्त्र की परतें उधड़कर आलोक प्रदान कर सकती हैं। भील जाति के उद्भव और विकास की गाथा को शोध की कसौटी पर कसकर निखार देने की अत्यधिक आवश्यकता है। भाषा विज्ञान, संस्कृत साहित्य, लोककथाएं, रीति-रिवाज आदि का गंभीर अध्ययन और शोध अत्यधिक तथ्य उजागर करने में सक्षम है।

---

१. Colonel Tod.

भीली भाषा व साहित्य

भील प्रजाति से सम्बद्ध भीली बोली पर प्रकाश डालने का श्रेय सर्वप्रथम पादरी थामसन[1] ने १८९५ ई० में ग्रहण किया था, जिसे परिष्कृत रूप जार्ज ग्रियर्सन[2] द्वारा प्रदान किया गया। भील अपनी बोल-चाल में, विचारों के आदान-प्रदान में, जिस बोली का प्रयोग करते, वही उनके लिए रूढ़ 'भीली' बन गई। ग्रियर्सन के अनुसार 'भीली आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की भीतरी उपशाखा के अन्तर्गत केन्द्रीय समुदाय से परिगणित भाषा है।'[3] अतः इन्होंने भाषा सर्वेक्षण भाग ९, खण्ड ३ में भील भाषाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार 'भीली मध्यदेशीय श्रेणी के अन्तर्गत राजस्थानी-गुजराती-गोष्ठी का एक उपभाषा समूह है।'[4] भीलों की आबादी की दृष्टि से विचार किया जाये तो मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग झाबुआ, रतलाम, धार और खरगोन राजस्थान के बांसवाड़ा, कुशलगढ, चित्तौड़, कोटा आदि तथा गुजरात का पंच, महाल, भरुच, गोधरा, बड़ौदा आदि भील बहुल क्षेत्र हैं। नवसारी, बनास, नाढा, सूरत क्षेत्र में भी पर्याप्त भील हैं। महाराष्ट्र के भी कुछ भागों में भील है। इन क्षेत्रों में वहां की स्थानीय बोलियों के अनुसार भीली बोली पर असर पड़ा है।

जान ग्रियर्सन के अनुसार भीली बोलने वालों की संख्या २६८९१०९ है जिनमें से ११६३८७२ परिनिष्ठित भीली तथा १५२६२३७

---

१. रुडिमेंट्स आफ द भीली लैंग्वेज, एस० एस० थामसन।
२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, जार्ज ए० ग्रियर्सन।
३. भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचद जैन, पृ० १०।
४. भारत की भाषाए और भाषा सम्बन्धी समस्याए, डॉ० सु० कु० चटर्जी, पृ० ३८-४०।

कनिष्ठ भीली बोलियों का उपयोग करते है।' १९५१, १९६१ तथा १९७१ की जनगणना में यह संख्या काफी बढ़ गई होगी। १९८१ की जनगणना के नवीनतम आंकड़े अपेक्षित हैं, जो भीली भाषा को



विशेष महत्त्व प्रदान करेंगे। आज यह भाषा पर्याप्त विस्तार पाती जा रही है। सुदूर ग्रामीण अंचलों में भीलों व अन्य जनजातियों को उनकी बोली में ही प्रारम्भिक शिक्षा देने का विशेष कार्यक्रम चलाया जा रहा है। मध्य प्रदेश के आदिवासियों को विशेष जागृत करने व शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति करने के उद्देश्य से भीली, गोंड़ी, कोरकू,

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, खंड ९, भाग ३, पृ० १, जार्ज ग्रियर्सन।

कुडख और हल्बी बोलियों में प्राथमिक पाठ्य पुस्तकें, वर्णमाला चार्ट्स, आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा विशेष रूप से तैयार करके प्रदान किया गया है। इससे इन आदिवासी बोलियों के विस्तार का क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ जाने की आशा है।

भील अपनी आन्तरिक अभिव्यक्ति भीली बोली में ही करते हैं। इनके गीत तो भीली में होते ही हैं किंतु लोकोक्तियां, कहावतें भी भीली में ही हैं और बड़ी प्रभावशाली हैं। प्राचीन समय में साहित्य की सुरक्षा एक जटिल समस्या थी, अतः अन्य अविकसित भाषाओं और बोलियों के समान भीली भी कंठस्थ की परंपरा में पलती रही। भील अपनी संस्कृति को इसी में सुरक्षित रखे हुए हैं।

१८६६ में एशियाटिक रिसर्च सोसायटी द्वारा मध्य भारत क्षेत्र में तत्संबंधी रिसर्च की पहल की गई। सर रिचार्ड टेम्पल ने तत्कालीन जिलाध्यक्षों को इन आदिवासियों विषयक विवरण एकत्रित करने का निर्देश दिया था। इसी क्रम में आर० वी० रसेल का कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण रहा। अन्य तत्कालीन अधिकारियों और विद्वानों ने इन पिछड़े वर्ग के लोगों की भाषा बोली रहन-सहन व समस्त जीवन प्रक्रिया पर कार्य शुरू किये।

भीली भाषा को बोलने वालों की ध्वनियों का आरोह-अवरोह वैदिक ध्वनियों से मिलता-जुलता है। यह अनुभूति मुझे उनके बीच रहकर हुई। पादरी थामसन ने भी अपने व्याकरण ग्रन्थ के प्राक्कथन में भीली शब्दों का जो आंकिकीय विश्लेषण प्रस्तुत किया है, उसमें ८४ प्रतिशत शब्द संस्कृत, १० प्रतिशत फारसी-अरबी तथा ६ प्रतिशत अनिर्णीत व्युत्पत्ति के हैं।[1]

'थामसन के शब्द संचय में कुल मिलाकर २९५६ भीली शब्द है, जिनमें से २४८३ संस्कृत, २९५ फारसी-अरबी तथा लगभग १७८ शब्द अनिर्णीत व्युत्पत्ति के हैं।'[2] थामसन की विवेचना से स्पष्ट हो

१. रुडिमेंट्स आफ दी भीली लैंग्वेज, प्रिफेस, एस० थामसन, पृ० ३।
२. भीली-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचंद जैन, पृ० २१।

जाता है कि 'भीली' आर्य भाषोद्भूत भाषा है। वैदिक सभ्यता के पर्याप्त तथ्य इनमें पाया जाना सम्भावित है। आवश्यकता है इनके अतल में पैठकर शोध सामग्री उजागर करने की शीघ्रता की। 'स' को 'ह' बोलना भी इन भीलों की विशेषता है।

डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी का मत है कि 'भीली' गुजराती और राजस्थानी से प्रभावित है। मध्य प्रदेश के निमाड़ व पश्चिमी क्षेत्र की भीली पर गुजराती, राजस्थानी तथा मालवी का प्रभाव है। भीली को गुजराती और राजस्थानी की विभाषा कहना भी उचित होगा। गुजराती से भीली के सम्बन्ध को विद्वानों ने बडी बारीकी से परखा है।

डॉ० टी० एन० दवे का कहना है कि 'इतिहास के भीतर झांकने से भीली का सम्बन्ध गुजराती से अधिक घनिष्ठ और गतानुगतिक दिखलाई देता है।'[1]

डॉ० भोलानाथ तिवारी का मत है कि 'भीली गुजराती की एक शाखा है जो आसपास के जंगलों में बोली जाती है।'[2]

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि 'भीली और खानदेश की बोलियों का गुजराती से बहुत सम्पर्क है।'[3]

जार्ज ए० ग्रियर्सन का मत है कि 'भीली को गुजराती तथा राजस्थानी के बीच की कड़ी कहा जा सकता है, इतना ही नही, वरन् इसे गुजराती की पूर्वी विभाषा कहना भी उचित होगा।'[4]

श्री के० का० शास्त्री का मत है कि 'भील लोग भारत के आदिवासी हैं, उनकी मूल भाषा का सर्वनाश हो गया है और वे आज गुजरात, मारवाड़, खानदेश की सरहद पर गुजराती के साथ सम्बन्ध रखने वाली बोली बोलते है।'[5]

---

१. द लैंग्वेज आफ महागुजरात, पृ० २७।
२. भाषा विज्ञान, पृ०-१४३।
३. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० ५५।
४. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, भाग १, खण्ड १, पृ० ३२९।
५. गुजराती रूप रचना, पृ० ४।

श्री सी० ई० ल्यूअर्ड का कहना है कि 'भीली मालवी तथा गुजराती की जारज भाषा है'।[1]

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि 'भील बोली मुख्यतः गुजराती से उत्पन्न है, किंतु इस पर मारवाड़ी और मराठी का प्रभाव है।'[2]

मैंने गुजरात, राजस्थान व मध्यप्रदेश की सरहद पर बीस वर्ष तक भीलों के संपर्क में रहकर उन्हें शिक्षित करने का काम किया है। सीमा क्षेत्र होने के कारण राजस्थान व गुजरात के भीलों से भी घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है। मुझे जो अनुभूति हुई है उसके अनुसार उक्त विद्वानों के विचार भीली पर पूर्णतः खरे उतरते हैं। साथ ही संस्कृत व वैदिक प्रभाव भी भीली भाषा पर और भीलों पर पर्याप्त है।

आज की भीली प्राचीन भीली का विकासात्मक स्वरूप है। गीत-संगीत वाले अध्याय में आप आधुनिक भीली को पढ़ेंगे। जरा १८८५ ई० की भीली को भी पढ़ें व परखें—

मौने मुडेटी हुरमा सौवांणे रे।
वाप बेटा नो कजिओ हुरमा सौवांणे रे।
झीणों कजीओ लागो हुरमा सौवांणे रे।
मोटो राजा वाजे हुरमा सौवांणे रे।[3]

भीली भाषा विभिन्न क्षेत्रों से भी प्रभावित हुई है, जैसे कि झाबुआई भीली कुछ भिन्न-सी है[4] क्योंकि झाबुआ में भीलों की संख्या सर्वाधिक है। १९७१ की जनगणना के अनुसार भीलबहुल जनसंख्या वाले क्षेत्र इस प्रकार है—

---

१. सेन्ट्रल इंडिया गजेटियर, पृ० ३४।
२. राजस्थानी भाषा, पृ० ६।
३. भील-भाषा, साहित्य, और संस्कृति, डॉ० नेमीचंद जैन, पृ० ३१।
४. The Bhil Kills, S. C. Verma, P. 19.

जिला	कुलजनसख्या	अनु० जनजाति, आदिवासी Cast-Tribs	भील जनसख्या
झाबुआ	६६७२११	५६५७०५	५६५६९४
धार	८४२४००	४४९७७०	४४९६५९
रतलाम	६२६५३४	७९३६५	७८४६०
खरगोन	१२८४८१२	५०८२४७	५०१६९५

भीलीक्षेत्र में भील भापा की प्रचुरता स्वाभाविक है। कितु यहां शिक्षा का प्रतिशत वहुत ही कम है (प्रदेश में सवसे कम)। अतः भीली भापा, व्याकरण, काव्य आदि को सुरक्षित रखना संभव न हो सका। अल्पतम साहित्य सुरक्षित है जवकि अधिकतम कंठस्थ व परंपरानुसार चला आ रहा है। भीली व्याकरण पर्याप्त परिस्कृत है, जिसपर डॉ० नेमीचद जैन[1] का शोधकार्य अत्यधिक सराहनीय है।

सामान्यतः भीली साहित्य भीलों के जीवन से सम्वद्ध है, जिसमें उनके कृपि-कार्य, खेत-खलिहान, रहन-सहन, प्रणय-प्रसंग, सुख-दुख आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन है, जो अंतस को छू लेने वाला सजीव होता है। अकृत्रिम होने के नाते स्वाभाविकता से सरावोर भीली काव्य कंठस्थ रहकर भी अत्यधिक प्रभावशाली होता है। कुछ पढ़ा-लिखा तवका इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा है, किन्तु इसके अतल में पैठकर परखा जाये तो असीम आनन्द की उपलव्धि होती है। भीली भापा में भरपूर साहित्यिक सुपमा-सौष्ठव समाविष्ट है।

समय की आंधी और झंझावातों ने भीली-भापा, साहित्य और संस्कृति के उत्तुंग शिखर को ढहाया अवश्य है, किन्तु वे इसके प्राण-तत्त्व में रसवत्ता व स्वाभाविकता को नष्ट नही कर पाये। भील-भापा एवं साहित्य तथा संस्कृति अजर-अमर रहते हुए अनवरत प्रवाहित होती हुई सजीव सर्जीवनी है। इसमें भीलो का समष्टिपर्ण जीवन प्रति-

१. (क) भील-भापा, साहित्य और सस्कृति।
(ख) भीली हिन्दी कोश।

विम्बित होता है, जिसके माधुर्य की महत्ता को जितना भी सराहा जाए, थोड़ा है।

भीली लोकसाहित्य की लोकप्रियता इसी से आंकी जा सकती है कि असीम उथल-पुथल, शोषण, संत्रास के बावजूद भी भील अपनी थाती को सजोये हुए है। अपने अभावग्रस्त जीवन को ये इसी रस-धारा से ही तो सींचते रहते हैं।

भीली साहित्य को प्रमुखतः तीन भागों में बांटा जा सकता है—

(१) प्रमुख साहित्य—जिसमें लोकगीत, लोककथा,

(२) प्रकीर्ण साहित्य—जिसमें लोकोक्तियां, मुहावरे,

(३) अन्य—जिसमें गद्य, पद्य, व्याकरण[1], आदि हैं।

ईसाई धर्म प्रचार के लिए पादरी प्रायः इन जातियों में घुल-मिलकर, इनकी भावनाओं को बदलने की दृष्टि से ईसा-मसीह विषयक पुस्तकें, कथाएं आदि भीलों में निःशुल्क बांटते रहते हैं। आज भी ईसाई धर्म विषयक अनेक पुस्तकें भीलों के घरों में पाई जाती हैं। ईसाई पादरी ईसाई धर्म प्रचार के लिए इनमें काम करते हैं। आदिवासी अपने भोलेपन के कारण उनका हो जाता है। विविध प्रकार का साहित्य ये पादरी उन्हें निःशुल्क उपलब्ध कराते हैं।

भील ग्रामीण जीवन के गीत गाकर निहाल हो जाते हैं जिसमें शौर्य-पराक्रम के गीतों की गरिमा कुछ अनूठी ही रहती है।

मावजी भक्ति सम्प्रदाय, और लसोड़िया भक्ति संप्रदाय का भीलों पर विशेष प्रभाव पड़ा, जिससे ये वैष्णव भक्ति में विभोर हो गये। गोविन्दगिरि बनजारे ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया। भक्ति भावना भरने के साथ ही उसने भीलों के सुधारवादी प्रवाह को जन-जीवन से जोड़कर वह रूप प्रदान किया कि अंग्रेजी सत्ता उसके विरुद्ध हो गई और अंततः गोविन्दगिरि को जीवन से भी हाथ धोना पड़ा।

---

१. (क) रुडिमेन्ट्स ऑफ द भीली लेंग्वेज, पादरी एस० थामसन।

(ख) ए शार्ट भीली ग्रामर ऑफ झाबुआ स्टेट, एल० जुंगब्लट।

वाल्मीकिदत्त महाराज की 'भिलोड़ी रामायण'[1] इसमें विशेष विख्यात हुई जिसकी गहरी छाप भीलों पर ऐसी पडी कि वे आज भी राम-राम ही कहकर एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। दत्तमहाराज[2] की रामायण का भी भीलों पर अत्यधिक असर हुआ। यह भीली लोकधुनों पर आधारित है अतः भील इसे बेहद पसंद करते है। इसके प्रभाव से शराब, चोरी व अन्य दुष्कर्मों से मुक्ति की शिक्षा इन्हें मिली है। राम साहित्य की सात्विक शिक्षा का भीलों पर अत्यधिक प्रभाव है।

भीली लोककथाएं

भीली लोककथाएं काफी समृद्ध हैं। लोककथाओं में प्राचीन भील सरदारों का पौरुष गान, सामाजिक समस्याएं, विवाह की प्रथाएं, जादू-टोने की घटनाएं आदि का उल्लेख होता है। पांगली का विवाह, मनजी भाई भील की कथा, अकाल आदि से संबंधित कथाएं विशेष प्रसिद्ध है।

मनजी भील की कथा लोकगीत में भी है और कथा में भी है। मनजी भील एक डूंगर पर अपनी झोंपड़ी बनाकर रहता है। वह अच्छा किसान है। उसके पास कुआं है, बैल है, गाय है। तभी अकाल पड़ जाता है। पानी की एक बूंद भी नही गिरती। फसलें सब चौपट हो जाती हैं। इसी समय उसका कुआं भी गिर जाता है। मनजी के पिता की मृत्यु भी हो जाती है। लोग मनजी से पिता का नुक्ता करने को कहते हैं। वह असमंजस में पड़ जाता है। पिता का नुक्ता करे, कुआं बनवाए अथवा बच्चों का पेट भरे।

अंततः मनजी कुआं बनवाने का निश्चय करता है। कुआ बनने

---

१. 'भिलोड़ी रामायण' की रचना १६४० में पंचमहाल मे भीलों के सुधार की दृष्टि से की गई।

२. इस भीली रामायण में १८ गीत हैं तथा अंत में, 'रामबावा नी आरती' है।

पर कुछ फसल हो जाती है, बच्चों का पालन-पोषण हो जाता है। एक साल बाद जब वर्षा होती है तो फसलें लहलहाने लगती हैं। तब मनजी पिता का नुक्ता करता है। मनजी भील की सूझ-बूझ की सराहना इस कथा में है।

एक और कथा¹ है। एक राजा भीलों पर कर लगाना चाहता था। उसकी राजकुमारी की शादी हेतु धन की जरूरत थी। भील इतना अधिक कर देने को सहमत नहीं थे। राजा का सिपाही उनके पास गया व कर देने के लिए विवश करने लगा। भीलों ने इनकार किया। राजा ने और सिपाही भेजे। भीलों ने उनको पराजित कर भगा दिया, आदि-आदि।

मेले-तमाशे का वर्णन भी इनकी लोककथाओं में होता है। एक बार एक बड़ा मेला होली के अवसर पर लगा। भील बड़ी मात्रा में एकत्रित हुए। लड़के-लड़कियां भी सज-धज के साथ एकत्रित हुए। खूब झूम-झूमकर गाते-नाचते पूरी रात व्यतीत कर दी। इसी समय कुछ लड़के, कुछ लड़कियां कहीं भाग गए। उनको भगोरिया का अर्थ पूरा करना था। फिर उनकी शादी हो गई।

भीलों की गौरवपूर्ण गाथाएं उनके भोले-भाले स्वभाव, निर्भीक व्यक्तित्व, साहसी-स्वाभिमानी और कर्तव्यपरायण चरित्र से झलकती हैं। वे इनके जीवन से जुड़ी हुई हैं। भीलों के पास साहित्य का भंडार तो है नहीं; हां, उनके व्यावहारिक अनुभव से उद्भूत कहावतें और लोकोक्तियां अवश्य ही उनकी अनुपम थाती हैं।

कहावतें

यहां भीलों की कुछ प्रमुख कहावतें उद्धृत की जा रही हैं, जो भीली जीवन की महत्ता को उजागर करती हैं—

१. भूखला तो भूखला मूकला खटो—हम भूखे हैं तो भी सुखी हैं।

२. भूखे हू भेड़ाटो खाये भण भीख नीं मागे—भूखे रहकर भी इधर-उधर भटकना स्वीकार है पर भीख मांगना शान के खिलाफ है।

---

१. भीलों की लोककथाएं, पु० लाल० मेनारिया।

३. आज करवानु काल ने माये न राखवुं—आज का काम कल पर नहीं रखना चाहिए।

४. सेर नी दवा, ने जंगल नी हवा—शहर की दवा और जंगल की हवा बराबर है। यही कारण है कि भील स्वस्थ रहते हैं।

५. वैरी गारे नो खोटो—मिट्‌टी का दुश्मन भी बुरा होता है।

६. भोला भोटा अने सेठा मोरा—सेठ मालदार भीलों के भोले-पन से हुए हैं।

७. भोला नो भगवान से—निश्छल व्यक्तियों का भगवान होता है।

८. सत सांदेणिये देखाय—सत्य चांदनी तक में दिखाई देता है।

९. हुकम वगर पान नी हाले—ईश्वर की आज्ञा विना पत्ता भी नहीं हिलता।

१०. टुकड़ा वगर मोटा-मोटा रुकाई जाय—पैसे विना अच्छे-अच्छे लोग भी अड़ जाते हैं।

११. सुख-दुख नी जोडी है—सुख-दुःख हमेशा साथ रहता है।

१२. खारड़ा मा कांटों भील मां आंटो हदा रे—जूते में काटा और भील में दुश्मन के प्रति वैर भाव सदा ही रहता है।

१३. भील भोला ने हाथ में टोला—भील भोले हैं पर स्वाभि-मानी है।

१४. धन-जोवन-माया तीन दड़ो नी पामणी—धन, यौवन, माया तीन दिन के अतिथि हैं।

१५. जुग जैरी है तो मलख वैरी—कड़वी जबान से हीजहान दुश्मन है।

मुहावरे

परस्पर वातचीत, और सवाल-जवाव का सम्वन्ध मुहावरों के माध्यम से प्रकट होता है। भीला में भी कुछ प्रमुख मुहावरे इस प्रकार है जो भीलों के जीवन से जुड़े हुए हैं। कोई भी ऐसा

वाक्यांश, जिसका शब्दार्थ ग्रहण न करके कोई विलक्षण अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह मुहावरा कहलाता है। यथा—

१. वाट जोवी—राह देखना, प्रतीक्षा करना।
२. वेसमांय पडवु—बीच में पड़ना, हस्तक्षेप करना।
३. हीमत राखवी—हिम्मत रखना।
४. जेर सडावणु—क्रुद्ध करना।
५. थाक खावो—विश्राम करना।
६. ढाकियां पूत—खूब लाड-प्यार से रखा गया पुत्र।
७. तरवारे नी धार—कठिन कार्य।
८. वगर पेदा नी धड़ग—सिद्धान्तहीन व्यक्ति।
९. उपले हाथ—विवेकपूर्ण।
१०. वांहड़ो दाड़ो—सायंकाल।
११. काठो डोट—अत्यधिक कंजूस।
१२. माथुं डोलाववु—अस्वीकार करना।
१३. माथुं नमावणु—नमस्कार करना
१४. आख देखाडवी—धमकाना।
१५. कानमां वात केवी—गुप्त मन्त्रणा करना।
१६. डाडी करवी—शोक व्यक्त करना।
१७. सेडो फाडवो—सम्बन्ध-विच्छेद करना।
१८. गुडी वालवी—आत्मसमर्पण करना।

पहेलियां

१. 'गालूं ने गलाऊं ने गाल्या पसे कडुं ने' (काजल)
२. 'काली से कोड्याली से काला विलमं रेती से
रातो पाणी पीवती से मरद्यां सोगा लेती से' (तलवार)
३. 'आंकड़ बांकड़ लाकड़ी घड्वार्यो असी घड़ी जो लेग्यो लंका तोड़' (बन्दूक)
४. 'रगवग राधो साले, ताण माता दह पांग' (हल और किसान)

५. 'सपल्यो सोर सोवटे वेहज्यो, ले भाटा साती पे,
आंवा सोखे गुठल्यां नाखे' (चरखो)[1]

गिनती

भीली भाषा में गिनती का दैनिक बोलचाल में अत्यधिक महत्त्व है। भीली क्षेत्र की गिनती इस तालिका में देखें—

म० प्र० (निमाड़)	म० प्र०(झाबुआ)	राजस्थान	गुजरात
एक	एक	एक	एक
वे (दुई)	वे	बे	वे (वेन)
तीन	तीन	तीन	तण
सार	शार	सार	सार
पांस	पास	पास	पांस
सोह्	सो	से	सो
हात	हात	हात	हात
आठ	आठ	आठ	आंठ
नो	नो	नौ	नोव
दोह्	दोह्	दोह्	दोह्
ग्यारह्	ग्यारे	ग्यारा	इग्यार
बारा	बारे	बारा	बार
तेरा	तेरे	तेरा	तेर
सौदा	सउदे	सउदा	सउद
पदरा	पन्द्रे	पदरा	पन्दर
सूल	होले	सोला	होल
सोतरे	हतरे	सतरा	हत्तर
अठारे	अठारे	अठार	अराठ
उगुण	ओगणोह्	ओगनीस	उगणी
वी, वीह्	वीह्	बीस	वीह्

१. भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचंद जैन, पृ० ११२।

विवाह-प्रथा

भीलो की प्रणय प्रथाएं बड़ी रोचक, रोमांचक तथा उनकी परिस्थितियो के अनुकूल अति उत्तम होती है । अरण्य के उन्मुक्त वातावरण में विहार करने वाले भील युवक-युवतियां पारस्परिक प्रेमांकुर के उदय होने पर उसकी पराकाष्ठा की परिणति भारतीय प्राचीन संस्कृति के अनुरूप स्वयंवर अथवा गंधर्व-विवाह के परिष्कृत स्वरूप में करते हैं ,जिसका परिवर्तित रूप है, 'भगोरिया' । इसे प्रणय-पर्व कहे तो कोई अत्युक्ति नहीं ।

भगोरिया—भीलों का यह सबसे बड़ा पावन और पुरातन प्रणय-पर्व है, जिसमें उनके आह्लाद, उमंग, उन्माद व प्रेमानुभूति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति होती है । होली के पूर्व जो हाट-बाजार भरता है, उसमें आसपास के भील युवक-युवतियां बीहड़ वनों की अमराइयों से निकलकर, ढोलों की थाप पर, छिटकते हुए एकत्रित होते हैं। पारम्परिक वेश-भूषा में सज-धजकर, ये लोग इस भगोरिया हाट में एकत्रित हो, नाचते-गाते है ।



भील घने जंगलों में ऊवड-खावड़ पहाड़ियों पर अपने-अपने टापरे (झोंपड़ी) वनाकर रहते हैं। प्रति सप्ताह इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हाट (वाजार) का आयोजन होता है, जो निर्धारित गांवों में लगता है। कृपक भील साग-सब्जी आदि यही वेचते है। अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ये भील इन हाटों में एकत्रित होते है, तथा आपसी आदान-प्रदान की प्रथा से प्रफुल्लित जीवन-यापन करते हैं।

होली भीलों के नाच-गाने, मौज-मस्ती का सर्वोत्तम पर्व है। ऋतुराज वसंत का आह्वान इनमें असीम उन्माद, आह्लाद जागृत कर, थिरकने को मजवूर कर देता है। वनश्री की सुघराई, जव शतधा होकर उफन पडती है, वसंत की सुमधुर, वयार, कोकिल की मधुर-मादक कूक, भौरों की गुनगुनाहट—यह सब भीलों पर भरपूर हावी हो जाते है।

ऋतुराज वसंत की अगवानी में होली से महीनों पहले ही भील अपने-अपने टापरों पर रात को नाचते-गाते हुए बडा सुखद जीवन व्यतीत करते है। दिन-भर ये भील कठोर श्रम करते है। सायंकाल खाना खाने के पश्चात् इनका नाच-गाने का प्रमुख कार्य प्रारंभ होता है, जो पूरी रात चलता रहता है। वड़े-वड़े ढोल मंजीरा व वासुरी की धुन पर थिरकते हुए ये फूले नही समाते।

नाच और नशा इनके जीवन का प्रमुख अंग है। मदिरापान तो ये करते ही है और उसके नशे में ये झूमते-गाते, मौज मनाते है। वसंत की वहार में प्यार की प्यास वुझाने के लिए अविवाहित भील युवक-युवतियां भगोरिया में एकत्रित होते है। झुड के झुड टोली अर्थात् सामूहिक नृत्य में ये मस्त हो जाते है। पुरुषों की टोली व स्त्रियों की टोली, गले में वाहें डाले अपने-अपने समूहों के साथ आमने-सामने गाते व नाचते है।

यही प्रक्रिया इनकी भगोरिया हाट में भी रहती है। भील युवक शरीर पर हल्दी लगाकर, साफे वाधकर, झूलड़ी, लंगोटी पहने, माथे पर एक रंगीन फुन्दा लगा लेता है, जिससे यह पहचान हो जाती है

कि यह युवक अविवाहित है। इसी प्रकार अविवाहित भील युवती भी अपने विशेष परिधान घाघरा-लूगड़ा में सजी-संवरी सिर पर रंगीन फुन्दा लगा लेती है, जो उसके अविवाहित होने का प्रतीक है। आभूषणों से सुसज्जित इनके सुगठित शरीर पर सस्ता कथीर का गहना, खूब फबता है। पुरुष हाथों में कड़े, कानों में कुंडल व कुछ विशेष आभूषण पहनते हैं। वहीं युवतियां भी अपनी पारंपरिक वेश-भूषा में रहती हैं। गालों पर गोदने, माथे पर गोदने, शरीर के अन्य अंगों पर भी गोदने गुदवाने का इन्हें बड़ा शौक रहता है। इस प्रकार गोरे बदन पर काला तिल (गोदना) इनकी सुघराई को खूब संवारता है। उन्नत उरोजों पर कथीर-मूंगे व चांदी की ढेर सारी मालायें सुशोभित रहती हैं— हाथों में कथीर के कड़े, आंखों में काजल, मुख में पान तथा माथे पर विशेष उभरा हुआ आभूषण, पैर में कथीर के कड़े और रंग-विरंगी लूगडी-घाघरा आदि इनकी वेश-भूषा बड़ी आकर्षक होती है। इस विशेष सज-धज, संवार-संभार के साथ भील तरुण-तरुणिया भगोरिया हाट में प्रणय-प्यास को बुझाने की भावना से एकत्रित होते हैं।

अपने मनोनुकूल प्रियतम-प्रियतमा को चुनकर भागने की भूमिका पर आधारित होने के कारण ही शायद इसे भगोरिया प्रणय-पर्व कहा गया है। भगोरिया का अन्य भाव है—भग + गोरिया। 'भग' का तात्पर्य आप्टे संस्कृत कोष मे रगरेलियों से सबद्ध बताया गया है तो प्राचीन वैदिक वाङ्मय में भी 'भग' का अर्थ प्राणिग्रहण अर्थ में लगाया गया है। प्रायः विवाह के समय यह श्लोक वर-वधू से कहल-वाया जाता है—

गृह्णामिते सौभगत्वाय हस्त,
मया पत्या जरदष्टिर्यथास ।
भगो अर्यमा सविता परिधिर्मह्यं
त्वादुर्गार्हं पत्याय देवा ॥[1]

१. ऋग्वेद १०-८५-३६

अर्थात् हे शुभे, कल्याण और सम्पत्ति के लिए मैं तुम्हारा प्राणि-ग्रहण करता हूं जिससे मुझ अपने पति के साथ तुम वृद्धावस्था तक जीवित रहो। तुमको गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए भग अर्यमा, सविता आदि देवताओं ने मुझको दिया है।

वैदिक 'भग' उषा का भाई 'द्यौ' भी है। रूसी पुरातत्ववेत्ताओं ने 'भग' को 'वुगो' उपास्य देव से तुलना कर इसकी महत्ता का प्रतिपादन किया है। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि भगोरिया प्रेम-परिणय का पावन पर्व है जिसमें प्रेमी युगल की प्यास बुझती है।

भगोरिया का भाव उक्त वैदिक श्लोक में यदि परिणय से परखा जा सकता है तो भीलों की संस्कृति से परखना अति आवश्यक है। भगोरिया का अन्य अर्थ भी लोगों ने लगाया है। भगोर में भगोरिया मनाए जाने के कारण इसे भगोरिया कहा गया है। भीलबहुल क्षेत्र झाबुआ में भगोर नाम से एक प्रसिद्ध गाव भी है जहां के पुरातात्त्विक अवशेष भी परखने योग्य हैं। मैंने स्वयं इस गाव की यात्रा की है और वहां की परम्परा व प्राचीनता को परखा है।

भगोरिया का दूसरा भाव शैव प्रभाव से परिलक्षित होता है, जो भगवान शिव और पार्वती से प्रभावित है। प्रेममय रंगरलियां भी भग[1] के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो भगोरिया का द्योतक है। केलि, आमोद-प्रमोद, प्रेम-स्नेह आदि इस प्रणय-पर्व के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन काल के वसन्तोत्सव के समान ही यह पर्व भीलों में प्रचलित है, जो प्रणय-पर्व की पावनता से मंडित है।

सामान्य जन-जीवन में आज भगोरिया पर्व की पृष्ठभूमि जो तैयार की जाती है, वह यही है कि युवक-युवती आपसी सहमति से किसी सम्बन्धी के घर भाग जाते है, फिर कुछ दिनों बाद उनके माता-पिता की पारस्परिक चर्चा से उन युवक-युवतियों का विवाह हो जाता है। अतः यह प्रणय का भगोरिया-पर्व कहलाता है।

---

१. संस्कृत-हिन्दी कोश, आप्टे, पृ० ७२६।

भगोरिया हाट में युवक-युवतियां अपनी आन्तरिक प्रेमानुभूति को नेत्रों के कटाक्ष से उड़ेल एक-दूसरे को वशीभूत करते हैं। यदि युवती युवक को पसंद कर लेती है तो उसके द्वारा (युवक द्वारा) दिया हुआ पान स्वीकार कर, उसे गुलाल लगा देती है। बस, हो गई दोनो की रजामंदी। दोनों की पसंद उन्हें प्रेम-पाश में बांधने को आतुर कर देती है।



भीड़भाड़ भरे भगोरिया हाट में भागे हुए युवक-युवतियों की इनके माता-पिता एक-दो दिन तक प्रतीक्षा करते है, यदि ये नहीं लौटे तो वे समझ जाते है कि उनका प्रणय-संबंध हो गया है।

लड़की के मां-बाप तो उसी रात प्रतीक्षा कर निर्णय समझ लेते हैं जिस दिन भगोरिया भागता है, कि उनकी लड़की किसी प्रेमी के पाश में बंध गई है। बस फिर क्या, वे निकट के सम्बन्धियों से सम्पर्क बनाते हैं। दो-चार दिनों में ही उन्हें ज्ञात हो जाता है कि शादी का फैसला हो गया है।

लड़की का बाप अपनी बिरादरी के अन्य लोगों, (तड़वी-पटेल) से मिलकर लेन-देन की बात तय करता है। लड़के का बाप

लड़की के वाप को रुपये देता है। अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार, यह लेन-देन निश्चित होता है। कुकड़ी (मुर्गी), दारू (मदिरा), वोकडी (वकरा) का भी खूब प्रयोग इस प्रसंग में होता है। सम्वन्धी-अगुवा, तडवी-पटेल सभी प्रमुख-प्रमुख भूमिका निभाने वाले लोग इसमें मिलकर खाते-पोते व नाचते-गाते है। लडकी-लडके का भगोरिया में भागने की परिणति विवाह रूप मे वदल जाती है। वस, ये दम्पति के रूप में अपना जीवन व्यतीत करने लगते हैं। श्रम करते है व सुख से जीते है।

भीलों के प्रणय-प्रसंग का एक और रूप होता है, जो वलपूर्वक लड़की को भगा ले जाना है। युवक-युवती हाट-वाजार में मिलने पर एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। वहीं प्रेमाकुर उभरने लगता है। किसी वात में अनवन हो गई तो फिर युवक वल का प्रयोग करता है और युवती को ले जाता है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी खून-खरावा हो जाता है। भील समाज भी सुशिक्षित हो रहा है, अतः अव यह प्रथा वंद-सी हो गई है।

भीलों के विवाह की एक तीसरी प्रथा भी है जिसमे विवाहिता स्त्री यदि आपसी मतभेद के कारण पति को छोडना चाहती है, तो दोनों की सहमति से वह विलग हो सकती है। इसे 'नातरा' कहते हैं। अर्थात् स्त्री अपने पति का परित्याग कर दूसरे पति से नाता जोड़ लेती है। ऐसी स्थिति में यदि वच्चा है तो उसके पालन-पोषण के उत्तरदायित्व का भार दोनो को वहन करना पड़ता है। वड़े वच्चे का उत्तरदायित्व पहला वाला पति सभालता है और दुधमुंहे वच्चे का उत्तरदायित्व नया वाला पति संभालता है। दुधमुहा वच्चा जब वड़ा हो जाता है, तो उसे भी पूर्व पति के पास स्त्री भेज देती है। यही नही, वरन् दहेज (दापा) के रूप में सारा व्यय परित्याग वाला पति, नये पति से लेता है। जो भी उचित व्यय उनके समाज मे निर्धारित किया जाता है, वह सव देकर ही नया पति, उस पत्नी को ग्रहण कर सकता है।

शवर भीलों मे विवाह की एक पुरानी प्रथा यह भी है, कि यदि

युवक-युवती का प्रेमप्रगाढ़ हो गया है तो युवक को अपने पुरुषार्थ का परिचय देना होगा, तभी वे परिणय-बंधन में बंध सकते हैं। इस परीक्षण के लिए एक फर्लांग की दूरी पर एक नीबू लटका दिया जाता है। इस नीबू पर निशाना साधने के लिए युवक को निर्देश दिया जाता है। शर-संधान करके, तीन निशाने में यदि युवक नीबू को वेध देता है तो शादी पक्की हो जाती है, यदि तीन बार प्रयास करने पर वह निशाना लगाने में असफल होता है, तो प्रेम-संबंध विच्छेद हो जाता है। ऐसी असफल स्थिति में युवक युवती को बहन के रूप में स्वीकार कर जीवन भर इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है।

भीलों में समगोत्री विवाह वर्जित है। भीली बोली में इसे 'अड़ख' कहते है। अड़ख (गोत्र) की गणना ल्यूअर्ड ने विस्तार के साथ की है। यहां इनके प्रमुख गोत्रों की वैवाहिक प्रथाओं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

सोल्या[1]—भीलों का प्रमुख गोत्र है, जिसमें ये विवाह के अवसर पर बेर की झाड़ को पूजते है। नये कपड़े से ढककर, हल्दी, चावल, आदि से पूजा अर्चना कर मंगलमयी भविष्य की कामना करते हैं।

अटा सोल्या—ये भील सूर्योदय के समय विवाह की प्रक्रिया को प्रमुखता प्रदान करते है।

तार सोल्या—ये तारों को देखकर विवाह की रस्म पूरी करते हैं।

ऊबा सोल्या—ये खड़े रहकर विवाह के बंधन को पुष्टता प्रदान करते है अर्थात् लगन की सारी रस्मे खड़े होकर पूरी करते है।

पावरया—भीलों में युवक-युवती का प्रणय-संबंध दोनों की सहमति पर होता है, विशेषतः युवती की सहमति ही प्रधान होती है। युवती मनोनुकूल पति को पसंद कर लेती है, तब उसका पिता युवक के पिता से दहेज की मांग करता है। लड़के का पिता अपनी

---

१. भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचंद जैन, पृ० ११५-११६।

क्षमतानुसार दहेज (दापा) देकर शादी का समय निश्चित करा देता है। वस शादी हो जाती है।

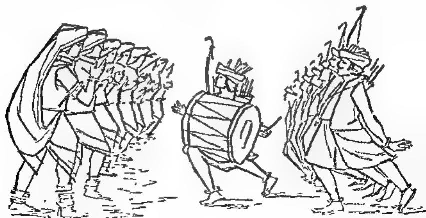
भीलों में वहु-विवाह की प्रथा भी प्रचलित है किंतु शिक्षा के साथ-साथ अव इसमें भी इने-गिने प्रसंग सुनने को मिलते है। भीलों का वैवाहिक जीवन वड़ा सुखद व गरिमामयी होता है। चरित्र-आचरण के मामले में ये वड़े ही संवेदनशील होते हैं। स्त्री के चरित्र के विषय में जरा भी शंका उत्पन्न होने पर ये मरने-कटने पर तुल जाते है। दाम्पत्य जीवन में किसी भी प्रकार का दखल ये वर्दाश्त नहीं करते। कठोरतम श्रम के साथ वैवाहिक सुखमय जीवन व्यतीत करना इनकी विशिष्टता है।

भील स्त्रियां भी चरित्र के मामले में पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई उच्चादर्शों वाली होती है।

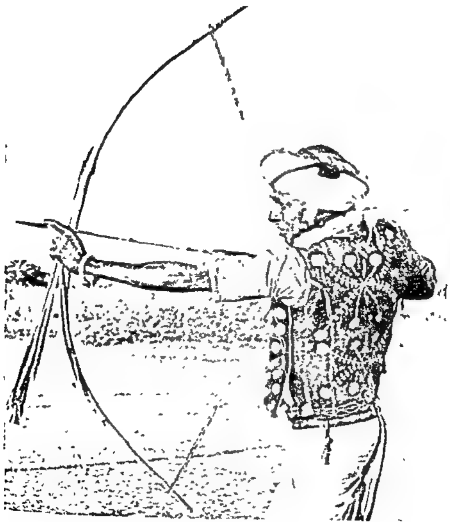
नृत्य व गायन

भील-भीलांगनाएं संगीत के विशेष प्रेमी होते है। दिन-भर काम करने के वाद भी ये थकावट महसूस न करते हुए पूरी-पूरी रात नाचते व गाते रहते है। सुरा और सगीत, नाच और नशा इनके दैनिक जीवन का प्रमुख अंग है। चिंता तो इनके पास मानो फटकने ही नही पाती। जो कुछ भी मिला उसीमें खा-पीकर मस्त। सायंकाल शराव तो ये पीते ही है, वस उसी खुमारी में ढोल की थाप पर थिरकने लगते हैं। मांदल, करगज, कीमड़ी व पावली इनके प्रमुख वाद्य है।

स्त्री-पुरुप समूह रूप में झूम-झूमकर गाते व नाचते है। पांच-सात पुरुप एक पक्ति में वांहों से वाहें मिलाये आगे-पीछे चलते गाते-नाचते हैं। उसी प्रकार स्त्रिया भी पाच-सात की संख्या में वांहों में वाहें डाले आगे-पीछे पुरुपों के समानान्तर नाचती-गाती हैं। इसके



अतिरिक्त ये गोले में घूम-घूमकर भी नाचते-गाते है। इस स्थिति में ढोल वजाने वाला व्यक्ति वीच में रहता है। गोले में भी स्त्री-पुरुप दोनों समूह गान करते है। समूह-गान इन्हे विशेष प्रिय है। इनके गीत प्रायः ग्रामीण जीवन से ही सम्वद्ध रहते है। निर्धनता में निरीह



अचूक निशाना



भीली चित्र
(पारिवारिक)



नृत्य में निमग्न भील



श्रमशील भील महिला



एक भील मुखिया

भील युगल (दम्पति)

वने ये गरीबों के गीत गाकर भी आनंद की अनुभूति करते है। इनका यह गीत कितना कारुणिक है—

भीलों में

मारी तू माड़ी मन मां वश्यार रे,
दन ग्यो रे वूड़वा खावा नी आलुयु।
मत रोवे बेटा बेला मत पाड़े,
काले से हाट आपुं कई करूहूं।
कटकूं, हुकेलू मारा रे डिकरा,
खाई ने सुइं जाजे मारे रे खोले।
आई मारी भूख तेवी नो तेवो
हजु खाऊ आई कटशुं से आल।

हिन्दी रूपान्तर

मेरी मां, मन में विचार कर,
दिन डूबने पर भी खाने को कुछ नही दिया।
मत रो बेटा, मुझे मत सता,
कल है बाजार, कुछ लाऊंगी।
रोटी का यह सूखा टुकड़ा है बेटा,
इसे खाकर सो जा मेरी गोद में।
मां, उसे खाने पर भी भूख वैसी की वैसी,
जी करता, और खाने को, एक टुकड़ा और दे।

कितनी मार्मिकता है इस भील गीत में जब एक अबोध बालक अपनी मां से खाने के लिए रोटी का टुकड़ा मांगता है। कितनी विवशता है उस मां की जो अपने लाड़ले को दूध-घी तो दूर रहा, सूखी रोटी भी पेट भर देने में असमर्थ है।

वैसे भी भील मक्के की बड़ी-बड़ी और मोटी रोटिया नमक व

१. भीली चेतना गीत, महीपाल भूरिया, पृ० ६।

मिर्च से ही खाते है। मध्य प्रदेश, गुजरात व राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्र झाबुआ रतलाम, धार, खरगोन, पंचमहाल, गोधरा, बांसवाड़ा, कोटा, चित्तौड आदि क्षेत्रों के भील मक्का ही पसंद करते हैं। कठोरतम श्रम के पश्चात् भी इन्हें पेट भर सूखी रोटी भी मुश्किल से ही नसीब होती है।

राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत गीत भी ये बड़े चाव के साथ गाते हैं। राष्ट्र के प्रति इनका असीम प्रेम अतीत से अब तक अबाध गति से रहा है और सदैव ही रहेगा। निम्नलिखित गीत में देश का सुन्दर चित्र खींचा गया है—

मारूं देश ते रुपालूं रे सकूं सरवर,
मारूं देश केवाए भील देश सकूं सरवर।
मारा देश मा ते डुगरा रे मोटा-मोटा रे,
इन डुगरां मा उजाड़े रे बड़ी-बड़ी रे।
इनी उजाड़ुं मां पाखेरूं डाले डाले रे,
यां ते पांखेरू पंखवाए रे बड़ी मोज्यां रे।
इनी उजाड़ मां जगली जनावरां पण रे,
मारूं देस ते रुपालुं रे सकूं सरवर।[1]

अर्थात्

हमारा देश सुन्दर है सकू सरोवर,
हमारा देश भील देश कहलाता सकू सरोवर।
हमारे देश में बड़े-बड़े पर्वत हैं
पर्वतों पर घने जंगल हैं
जंगलों की डाली पर पक्षी करते कलरव
ये पक्षी सुख से करते है परस्पर प्यार
इन जंगलों में भरे जंगली जानवर मेरा देश।

१. भीली चेतना गीत, महीपाल भूरिया, पृ० १० ।

भीली लोकगीतों में भी देश की छवि छलकती है, जिस पर प्रबुद्ध वर्ग गौरवान्वित हो अपनी थाती समझ उस पर इतराता है। प्राकृतिक सौन्दर्य कितना सुहावना, सुखद व सराहनीय होता है, यह भी भीली गीतों से उफनता है। खेत में काम करता हुआ भील जब थक जाता है तो गीतों की स्वर-लहरी गूंजने लगती है। ऐसा ही एक गीत देखिये—

धरती मा हे धम रे धम धरती दमड़ो लाग्यो,
था यूं रे पंसाती राज धरती दमडो लाग्यो,
नी मन्यू वाणीया नो राज धरती दमडो लाग्यो,
था यूं रे काग्रेस नू राज धरती दमड़ो लाग्यो,
नी मल्यू मामाजी ने राज धरती दमडो लाग्यो,
था यूं रे इंदरा नू राज धरती दमड़ो लाग्यो,
नी मल्यू भायां ने राज धरती दमड़ो लाग्यो,
धरती मा हे धम रे धम धरती दमड़ो लाग्यो।

यह भीली गीत मुझे एक ग्रामीण ने सुनाया जो बीहड़ वन में बांसुरी की धुन पर कुलांचें भर रहा था। जब मैं उसके टापरे पर गया व उनके जीवन, दैनिक क्रिया-कलाप आदि पर चर्चा करने के बाद कुछ गीत सुनाने व मुझे लिखाने को कहा, तो उस भील आदिवासी ने उक्त गीत गाकर सुनाया जिसे मैंने कागज पर लिख लिया। गीत के कुछ शब्द मेरी समझ में नहीं आये पर भावना की गहराई व उस आदिवासी भील की भाव-भगिमा को परखकर मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि वह स्वच्छ शासन प्रबंध चाहता है।

व्यापारी वर्ग के प्रति इनमें रोष का भाव व्यक्त होता है, जो इनका भयंकर शोषण करते है। यह तथ्य इनके गीतों में भी मुखरित हो जाता है। अपनी लोकोक्तियों में भी वे कह उठते है—

'करसी हाथे कमावे वांणन्या ना बेटा हास' अर्थात् कृषक अपने हाथों कमाता है और बनिया उसका उपयोग करता है।

इस वास्तविकता से इनकार नही किया जा सकता। मैंने स्वयं

कई बार देखा है कि व्यापारी जबर्दस्ती इनके कृषि उपज को हड़प लेते हैं। ज्यों ही भील कृषक हाट में अपनी उपज की सामग्री लेकर प्रवेश करता है कि व्यापारी वर्ग उन पर टूट पड़ता है और सस्ते मूल्यों पर सामग्री लेकर बाद में दुगुने मूल्य पर उन्हें ही देता है। कई बार तो मैंने स्वयं देखा है कि व्यापरी उन्हें मारता-पीटता भी खूब है। गालियां देना तो सामान्य बात है। इन भीलों के भोलेपन व दयनीय दशा पर बड़ा तरस आता है। अपने को ये भोला-भाला मानकर भगवान के भरोसे छोड़ देते है। ये अपनी बोलचाल मे कहते भी हैं—

'भोला नो भगवान से' अर्थात् निश्छल व्यक्तियो का भगवान ही होता है।

भीलों को स्वाधीनता आंदोलन ने भी प्रभावित किया। यह भावना भी इनके ग्रामीण गीतों में मुखरित हुई है। यथा—

धीरं धीरं गांधी नुं राज धीरं लडे।
तारी ओरवडानी जेले रेने लडरे गाधीनु राज धीरं लड़े।
तारी तकलीनी टेंको लेने लडरे गांधीनु राज धीरं लड़े।

यह गीत भी कितना अच्छा है—

रई ने केवें बोले रे गांधी हुंई आवे रे।
धोली ने टोपी रे गांधी हुंई आवे रे।
लाबो ने कूरतो पेरियां, गाधी हुंई आवे रे।
एक धोतरीयुं पेरियां गांधी हुंई आवे रे।
अंगरेजानु राज गांधी हुई आवे रे।
गुलामी नही करवी गाधी हुंई आवे रे।
भली करीने रेवुं गांधी हुंई आवे रे।
एम के तो आवे गांधी हुंई आवे रे।[1]

अंग्रेजी राज्य की कठोरता से वे ऊब गये थे। भीलो के जीवन पर

१. भीली-भाषा, साहित्य और सस्कृति, डॉ० नेमीचद जैन, पृ० ९९।

विशेष शोध ग्रंथ लिखने वाली रूसी विदुषी आईरीना से माश्को ने जोर देकर बताया है कि "अंग्रेजों के आगमन के समय से ही भीलों के उत्पीड़न का काल शुरू हुआ…ब्रिटिश शासन द्वारा लागू की गई गलघोंटू कर-प्रणाली का भीलों को खास तौर पर शिकार होना पड़ा, इस उत्पीड़न को सहन न कर पाने के कारण भीलों ने बार-बार विद्रोह किया।"[१]

भील रुढ़िवादी प्रवृत्ति से ग्रसित होकर भी जागृति के शंखनाद से सतर्क, सृजन की ओर उन्मुख होकर अपने दैनिक जीवन के संवार के प्रति संकल्पशील हैं। उनकी इस भावना का कितना यथार्थ छलकाव मनजी भील के इस लोकगीत में हुआ है—

हांसु राइने केवं बोले मनजी नाल माये रे।
समीयू रे पड्ज्यूं ने कुडो घरीयो मनजी नाल मांये रे।
समीयू रे परीयू ने बापू मरीयू मनजी नाल मांये रे।
काल नूं परनार ने बापनूं भरनार मनजी नाल माये रे।
बापुरे मुओ ने कुड़ी घरीयो मनजी नाल माये रे।
मनजी राईने केव बोले मनजी नाल मांये रे।
नीयाते करूं के कुडो खोदू मनजी नाल माये रे।
का मनजी भाई हांवल मारी वाता मनजी नाल मांये रे।
नीयाते करीते सोरा मरहे मनजी नाल मांये रे।
सोरां रे मरहां हांपत मरह मनजी नाल माये रे।
नीयाते सोडो ने कूडो खोदो मनजी नाल मांये रे।
कुडो खोदहो ते सोरा जीवहे मनजी नाल माये रे।
सोरारे जीवहं ते नाम रेहे मनजी नाल माये रे।
समीयू रे वलहे ते नीयाते करहूं मनजी नाल माये रे।
रे मनजी भाई कुडो खोदवे लागो मनजी नाल माये रे।[२]

अर्थात् मनजी भाई भील पर आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा।

---

१. नई दुनिया (दैनिक), दि० ३ अक्टूबर, १९७५।
२. राजस्थानी भीलों के लोकगीत, फूलजी भाई भील, पृ० १०३-१०४।

दुर्भिक्ष के कारण जहां दरिद्र दानव सताने लगा वही कुआं भी ढह गया, इसी बीच पिता का देहान्त हो गया। मनजी भाई भीलवड़े असमजस मे पड़ गया कि क्या वह अपना कुआं बनवाए, या पिता का मृत्यु का भोज करे, अथवा बच्चों का पालन-पोषण करे। अंततः मनजी भाई रूढ़िवादिता को तिलांजलि दे कुआं बनाने का ही निश्चय करता है, जिससे फसल पैदा हो। कृषि कर्म को प्राथमिकता देना तथा रूढ़िवादिता से मुक्त होने का उपक्रम गीत के माध्यम से उद्‌बोधक है।

भारतीय संस्कृति में बेटी की विदाई का मार्मिक प्रसंग जहां माता-पिता को विह्वल कर देता है वही पास-पड़ोस, सगे सम्बन्धियों को भी करुणार्द्र बना देता है। अभिज्ञान शाकुन्तल मे महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई पर व्याकुल होकर कहते है कि यद्यपि शकुन्तला मेरी पालित पुत्री है, फिर भी इसकी विदाई से मेरा हृदय व्यथा से व्याकुल होकर फट रहा है, जबकि मैं अनासक्त ऋषि हूं। जो वास्तविक पिता पुत्री की विदाई करते है उनकी क्या स्थिति होती होगी, इसे भुक्तभोगी ही समझता है।

ससुराल मे बेटी को कैसी स्थिति होती है। सास-ससुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी—सबकी स्वाभाविकता को ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में भीली गीत किस प्रकार उजागर करता है, इसकी परख इस भीली गीत में करें—

बापा पारकु लोक ते दक देही रे हेली बाजरियुं।
बापा पारकु दे ओर ते दक देही रे हेली बाजरियुं।
बापा पारकी नण्दी पार जोहे रे हेली बाजरियुं।
बाई पार जोहे तो जाणी जाजो रे हेली बाजरियुं।
जाणी जाइने करी लेजी रे हेली बाजरियुं।
जाणी जाइने करी लेजो रे हेली बाजरियुं।
माता पारकी जेठाणी पार जोहे रे हेली बाजरियुं।
माता पारकी हाहू पार जोहे रे हेली बाजरियुं।

वाई सुल्हे आग अलोवी ने पारजो हे रे हेली वाजरियुं।
वाई पणियारअे वेडुं मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियुं।
वाई पोइटो मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियुं।
वाई वाखो मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियुं।
वाई खुणे हेण्णो मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियु।
वाई घोट्टी माते डण्णु मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियुं।
वाई हाण्णु अलुणुं मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियु।
वाई थाली इँटाली भेजी ने पारजोहे रे हेली वाजरियुं।
वाई वाथणू मेली ने पारजोहे रे हेली वाजरियुं।
वाई पारजोहे ते जाणी जाजो रे हेली वाजरियुं।
जाणी जाइने तमां करी लीजो रे हेली वाजरियु।
वाई पारको लोक ते आपुणु नाम काड़हे रे हेली वाजरियुं।
वाई पारको लोक ते वापनुं नाम काड़हे रे हेली वाजरियुं।
वाई नाम काडहे ते पीएर लाजी जाहे रे हेली वाजरियुं।
वाई गीत जातुं मेली रे हेली वाजरियु॥[1]

बेटी अपने बाप से कहती है कि हे पिता, मैं अपने ससुराल तो जा रही हूं पर ससुराल के पराये लोग मेरी परीक्षा लेंगे। सास, ननद, जेठानी, देवर मुझे दुःख देंगे। पिता पुत्री की भावना को परख समझाता है कि बेटी, तूं ससुराल जाकर सबकी भावनाओं का आदर करना। घर-गृहस्थी का कार्य उनकी इच्छानुसार संभाल कर शीघ्रता से पूर्ण करना। ससुराल वालों की परीक्षा में तूं खरी उतरना। बेटी कहती है कि दैनिक कार्यों में वे लोग व्यवधान डालकर मेरी परीक्षा लेंगे। तब पिता समझाता है कि सब्जी को अलोनी छोड़कर, घट्टी पर अनाज पीसने के लिए रखकर, कूड़ा-कचरा विखराकर, वर्तन जूठे छोड़कर आदि तरीकों से हे बेटी यदि ससुराल वाले तेरी परीक्षा लें तो तू अपने बाप की मर्यादा का ध्यान रखते हुए, बहू की परंपरा का पूर्ण निर्वाह करना।

---

१. राजस्थानी भील गीत, भाग-२, पृ० ६१-६२।

कितनी स्वाभाविकता है, कितनी मार्मिकता है और निर्मल पिता-पुत्री के वात्सल्य की वरीयता है, जिसमें भारतीय संस्कृति का सम्बल शतधा होकर मुखरित हुआ है !

मध्य प्रदेश, राजस्थान व गुजरात के भीलों में साम्य है। इन सबका रहन-सहन, गीत-भजन एक समान ही है। भीली जीवन की सभी परंपराओं का ये पूर्ण निर्वाह प्रायः एक समान ही करते हैं। हां, गुजराती, राजस्थानी, व मालवी भाषा (बोली) का कुछ प्रभाव यत्र-तत्र छलकता है। इनके लोकगीत अन्तःकरण को स्पर्श कर देते हैं।

भीलों के गीतों के प्रमुख पारखी पादरी एल० जुंगब्लट थे, जिनका गीत-संग्रह भील क्षेत्र में बहुत अधिक प्रसिद्ध है। भीलों की भावनाओं को परख कर जुंगब्लट ने जो गीत-संग्रह की पदवी इन्हें सौंपी, वह अनवरत इन्हें आह्लाद के अमृत सागर में गोते लगवाती रहती है। भीलों की सारी जिन्दगी इन्हीं गीतों में सराबोर दुःख में भी सुख की अनुभूति कराती है। इन गीतों मे प्रणय-गीतों की भी प्रधानता विशेष है।

'ओखां-अन्द्रप' (उषा-अनिरुद्ध) का प्रेमाख्यान इन्हें बेहद प्रिय है। इसी आख्यान को भील गीतों के द्वारा गाते-नाचते, मौज मनाते हैं। उषा बाणासुर की लड़की थी। एक रात उषा को स्वप्न में एक युवक रमण करते दिखाई पड़ा। उषा उस पर आसक्त हो गई। प्रातः उसकी पागल जैसी दशा देखकर उसकी सखी चित्रलेखा ने विशेष सुन्दर-सुन्दर राजकुमारों के चित्र उषा के सम्मुख प्रस्तुत किये। उषा अनिरुद्ध को पहचान गई। अंततः चित्रलेखा ने अनिरुद्ध का अपहरण कर उषा को सौंप दिया। उषा अपने अन्तःपुर मे अनिरुद्ध को रखकर तृप्ति का अनुभव करने लगी। बाणासुर व कृष्ण को जब इसका पता लगा तो दोनों में घनघोर युद्ध हुआ। इसमें बाणासुर पराजित हुआ किंतु उषा-अनिरुद्ध का गांधर्व विवाह हो गया। इस प्रेमाख्यान को

---

१. मैजिक साग्ज आफ द भील्स आफ झाबुआ स्टेट, एल० जुगब्लट।

भील वड़े उन्माद के साथ गाते-नाचते व झूमते हैं। यह विषय 'शोणितपुर'[1] को पुरातात्त्विक महत्ता को उजागर करने मे अत्यधिक गवेषणीय हो, इस विषयक अनेक लोककथाएं भी भीलों में प्रचलित है। हिन्दू पुराण, जैन पुराण तथा इतिहास का यह महत्त्वपूर्ण विषय है, जो भीली गीतों में बड़ी सरसता के साथ संजोया गया है। तथ्य पर गंभीर शोध अपेक्षित है।

कसूमर डामर के भीली गीत भी भीलों में खूब प्रचलित है। इस सामग्री को भील स्मरण परम्परा से ही अपनाये हुए हैं, क्योंकि उनके पास छपाई-लिखाई की सुविधाएं उपलब्ध नही थी। अब भीली क्षेत्रों में पर्याप्त साहित्य प्राप्त हो रहा है।

ढोला-मारू का प्रणय-प्रसंग भी भीलों के गीतों में खूब निखरा है। राजस्थानी भीलों की तो यह अनुपम निधि है। वैसे भी राजस्थानी भाषा में 'ढोला-मारू'[2] का प्रणय-गीत इतना सरस, सुखद व उत्तेजक है कि गायक व श्रोता मदोन्मत्त हो जाते हैं। मैंने स्वयं इन गीतों को कुशलगढ (राजस्थान) तथा झाबुआ में सुना जो अत्यधिक आकर्षक, मधुर व कर्णप्रिय लगे। भील 'ढोला-मारुणी' के प्रेमाख्यान को प्रस्तुत कर मन को मोह लेते है।

भीलों के संवद गीत भी वड़े रोमाचक होते है जिनमे प्रणय की प्रधानता, स्निग्धता, माधुर्य और शृंगार के सम्बल का प्राचुर्य रहता है। परखिये इस प्रेम की पराकाष्ठा को—

मे तो जाइने पलो खीस्यो।
गोवाल धीरे धीरे उठ्यो।
गोवाल सगे सुटां सूरमा।
गोरी, गायां फेरती जाजे॥[3]

---

१. शोणितपुर बाणासुर की राजधानी थी।

२. (क) पुगलगढ़ की पद्मिनी-मरवण } भीली 'ढोला-मारुणी'
(ख) नटवरगढ का राजकुमार-ढोला

३. भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचन्द जैन, पृ० ८८।

अर्थात् मैंने जाकर उसका पल्लू खींच लिया, वह धीरे-धीरे उठा, वह चूरमा खा रहा है तथा आनंद में विभोर कह रहा है—प्रिये, गौओं को इस ओर घुमाती आना।

स्फुट गीत भी भीलों में पर्याप्त प्रचलित हैं। ये गीत कृषि, टोना-टोटका, पूजा-पाठ (बडवा-भोपा), दुर्भिक्ष, भक्ति भावना, प्रकृति-चित्रण आदि से सम्बद्ध होते हैं। मध्यप्रदेश के प्रमुख लोकगीत-कारों में कसूमर डामर,[1] राजस्थान के वगता-डामर तथा गुजरात के सीदड़ो डामर के गीत भीलों की ज़ुबान पर रहते हैं।

साहूकार जो भीलों का शोषण करता है, इसको भी भील अपने गीत में गाकर आन्तरिक दर्द को माधुर्य में घोलकर पी जाते हैं—

मारां काला रे खेरयां वेसण सलयां जाए।
हूंते वाजु घणी पण वेसण सलयां जाए।
नंदी घेड़े ना खेरयां वेसण सल्यां जाए।
करज आले हवकार ने खेरयां ठगण ले।
मारी भीड माथे खेरयां गेणे मेलाड़े।
गेणे मेलाड़े पसे खेरयां ठगण ले।
तलाव मेरे ना खेरयां ठगण सल्यां जाए।
खेतर हेडे रे नेहर पाणी फेरी जाए।
हवकार हवाडे रुपया वदू मूल ना।
हवाड़ी ने मन रुपया खेरयां ठगण ले।
खेरयां ठगी ने मारां इंजिने कमाए।
खेरयां ठगी न मारा हजारू कमाए।
मन ढाड्क्यों लगाड़ी धानुई कमाए।

---

१. डामर-बड़े सरदारों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सामन्त और डामर में अंतर है। सामन्त अपने प्रदेश का राजा होता है जबकि डामर स्थानीय शासक होता है। भारतीय इतिहास का उन्मीलन, श्री जयचद विद्यालकार, पृ० ४३७-३८।

जमीनो ते धणी अव दाड़क्यों वनी जाए ।
एवी कले इनानी मने ठगी ले ।[1]

कृपक भील की आह अपना शोपण देखकर उफन पडती है कि उसकी जमीन साहूकार के कब्जे मे गिरवी के रूप में पड़ी हुई है। नदी किनारे की उपजाऊ जमीन भी साहूकार थोड़ा-सा कर्ज देकर, व्याज पर व्याज वढ़ाता हुआ हड़प लेता है। उन्ही खेतो मे भील जो असली खेत का मालिक है, मजदूर वनकर काम करता है, पर पेट भरने को उसी का उपजाया हुआ अन्न नही मिलता। जवकि आज आधुनिकतम साधन से साहूकार उसी जमीन से खूव फायदा उठाता है। इस वेदना को वेचैनी भोलो मे होती अवश्य है पर वे विवश होकर ही अपनी जमीन, पेड, गहने सव कुछ साहूकार को देने के लिए मजवूर हो जाते है।

भील अपने गीतों में असीम गम को भूल गौरवमयी जिंदगी गुजारते है। इनके प्रमुख गीतों में प्रणय-गीत, कृषि-जीवन के गीत, गार्हस्थ्य जीवन के गीत, धाड़ा-गीत, भक्ति-गीत—जिसमें राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति के गीत होते है।

इसी क्रम मे विवाह-गीत, नृत्य-गीत, जातरा-गीत, सुधारवादी गीत, वन्दनागीत, संवादगीत, समूहगीत, देश-भक्ति के गीत आदि होते है।

झाबुआ (म०प्र०) राजस्थान तथा गुजरात के भीलो के गीत प्रायः एक समान ही होते है। इनके गीतों में गम भूल जाने की संजीवनी है, तभी तो ये इतने कष्टों में रहकर भी सदैव थिरकते रहते है।

भीलों के घर जव वच्चा पैदा होता है तव वड़ा उछाह-उत्साह का वातावरण रहता है। उस समय भील-भीलागनाएं खूव झूम-झूमकर गाते है। यथा—

१. भीली चेतना गीत, महीपाल भूरिया, पृ० ६८।

आलु कुवर नो वापो कुण छेरे, आलु कुंवर जल्मियो।
आलु कुवर नो बापो कुण छेरे, आलु कुंवर जल्मियो।
आलु कुवर नो वापो रूपसिंगरे आलु कुवर जल्मियो।
आलु कुवर नो माड़ी कुण छेरे आलु कुंवर जल्मियो।
आलु कुवर नी माडी काली रे आलु कुवर जल्मियो।
आलु कुवर नो वावो कुण छे रे आलु कुंवर जल्मियो।
आलु कुवर नो वावो रणसिंग रे आलु कुंवर जल्मियो।[1]

शादी के समय 'भील' हल्दी का लेप भी लगाते हैं। उस समय का यह गीत हमें हमारे छात्र रफीन मावी ने बताया व सारी प्रथाओं से परिचित कराया—

वेने तेड़तां घड़ि एक लाग्यू मन म्माव वस्यार कर रे लाड़ाभाई।
वने आवहे सांवकला मागहे मन्नमा वस्यार कर रे लाड़ाभाई।
वन्नवो तेड़ता घडियेक लाग्यू मन्नमां वस्यार कर रे लाड़ाभाई।
वन्नवो आवहे दारु डो मांग हे मन्नमां वस्यार कर रे लाड़ाभाई।

लाड़ा (दूल्हे) के प्रति कितना अनुराग, इन गीतों में छलकता है। भीलों की भावानुभूति कितनी गुदगुदानें वाली, रोम-रोम में एक मृदुल सिहरन पैदा कर देने वाली होती है। इस महत्ता को जितना भी परखा जाए उतनी ही अधिक और गहराई का भाव प्रकट होता है। शादी के पूर्व न्योता (नोत्रा) भेजने का गीत भी इसी से सम्बद्ध है—

पील्ली है हल्दी हरियोचहे चोकी।
पील्ली है हल्दी हरियोचहे चोकी।
तू जाजे रे ममेरा नातरिये।
तू जाजे रे ममेरा नातरिये।
न जाणु नाम न जाणु नाम हुक्कां जाइ नातरियो।
न जाणु नाम न जाणु नाम हुक्कां जाइ नातरियो।

कितनी भोली-भाली अनभिज्ञता इस लोकगीत में समाविष्ट की गई है। नियंत्रण के लिए आज भी अधिकतर प्राचीन प्रथाएं ही प्रयुक्त

---

१. रफीन मावी द्वारा लेखक को लिखाया गया गीत।

हैं अर्थात् हल्दी पर चावल पर अन्य प्रकार की सामग्री दिखाकर यथार्थता का भान कराना।



लाड़ी (दुल्हन) को गहनें पहनाते समय, मां-बाप के सामने लड़कियां इस प्रकार का गीत गाती है—

रम्भापुर गइ रे वन्नडी असजयं नी आययां।
वापो जोये वाट डीकरी असजूयं नी आययां।
गेणुल्लां चाल्ले लाग्यां डीकरी क्वाही आये घर।
रम्भापुर गइ रे वन्नडी असजूयं नी आययां।
माडी जोयो वाट वेटी असजूयं नी आययां।

रम्भापुर झाबुआ जिले का एक प्रसिद्ध गाव है जहां गहने बनाने वाले सुनारों की ख्याति है। भीलों के कथीर वाले आभूषण रम्भापुर के सुनार अच्छा बनाते है। अतः दुल्हन को रम्भापुर का गहना मां-

बाप पहनाते हैं जिससे सुघर-सलोनी दुल्हन अपने ससुराल जाए। ससुराल की यथार्थता का भान इस ग्रामीण लोकगीत में होता है, यथा—

वन्नी ताम्वां पियोर रे टुक्को होहरी रे।
वन्नी वापा माहीना वडांलाड हेरे।
वन्नी हाहरा काकुड़ी वना वडां पावा हेरे।
वन्नी वीरा मां जाइना वड्डालाड हेरे।
वन्नी वापा माड़ी ने खोले उसेरिया।
वन्नी होरहरी कडो न वापां तम को रे।
वन्नी हाहुडी केको न माडी हमक्को रे।
वन्नी वीरा भौजाई न खोले उसेरिया रे।
वन्नी जेठ-जेठानी ना वडा वख्खां रे।
वन्नी जेठ वी के हो न वीरा हमक्को रे।
वन्नी जेठानी कहो रे भौजाई हमक्को रे ॥[1]

लाड़ो (दुल्हन) का पीहर लम्बा तथा ससुराल छोटी है अर्थात् उसका तादात्म्य अब ससुराल से अधिक हो गया है। ससुराल से सन्निकटता बढ़ गई है जब कि पीहर से दूरी बढ़ती जा रही है। अब वह अपने मा-बाप की नहीं, वरन् सास-ससुर की हो गई है। भाई-भौजाई को नहीं, जेठ-जेठानी की हो गई है। अब उसे पीहर वालों का नहीं, वरन् ससुराल वालों का प्यार दुलार मिलेगा।

इन्हीं पीहर व ससुराल के सम्बन्धों की गरिमा का गान इस भीली गीत में है। ससुराल की सन्निकटता को भारतीय संस्कृति के अनुरूप विशेष सवार मिला है। मार्मिकता का माधुर्य गीत में मुखरित हुआ है।

---

१. ये गीत मुझे रूपीन मावी से प्राप्त हुए जो मेरे विद्यार्थी रहे।

रीति-रिवाज

भील दम्पति का दैनिक जीवन बड़े श्रम, सौहार्द व सुखद अनुभूति के साथ व्यतीत होता है। निश्छलता और आस्था इनकी विशेषता है। पति-पत्नी अपनी कमाई की राशि का उपयोग प्रायः उसी दिन कर लेते है। मेहनत-मजदूरी से जो भी मिला खा-पीकर मस्त रहते हैं। कल क्या होगा, इसकी चिन्ता इन्हें नही रहती। हां, साय-काल शराब पीना और आधी-आधी रात तक नाचना-गाना इनकी आदतो का एक अंग है। चिंता तो इनके पास मानो फटकने ही नही पाती।

भीलांगना अपने पति व संतान के प्रति अत्यधिक आस्थावान, स्नेहशील, व सेवाभावी होती है। देवी-देवताओ की पूजा-अर्चना के साथ टोना-टोटका, भूत-प्रेत, डाकन-शाकन में इनका अधिक विश्वास होता है। वैवाहिक रीति-रिवाजों में हिन्दू संस्कृति का समावेश तो है ही, पर मंगलमय भविष्य के लिए अनेक अंधविश्वासों की प्रथाएं भी इनमें प्रचलित है।

भील महिलाएं प्रसव पीड़ा को सहन करने में बड़ी सक्षम होती है। आधुनिक अस्पतालों में तो गंभीर स्थिति होने पर ही ये जाती है। अन्यथा अपने टापरों में ही प्रसव-कर्म से निवृत होती हैं। ७, ८, ६ महीने तक का गर्भ धारण करते हुए भी ये श्रमपूर्वक खेतों मे काम करती हैं, घर की चक्की में आटा पीसती हैं, खाना बनाती है व अन्य घरेलू कार्य करती है। पानी का घड़ा सिर पर रखकर जब चलती हैं तो इनकी छवि अनूठा ही श्रम-सौन्दर्य का भाव उड़ेलती है। घर का पूरा पानी स्त्रिया ही भरती है।

प्रसव-काल में कोई पड़ोसी महिला मदद कर देती है, फिर तो ये निश्चित। हां, टापरे (झोपड़ी) के दरवाजे पर (जिसमें बच्चा पैदा होता है) आग जला दी जाती है। नवजात शिशु के समीप लोहे का तीर रख दिया जाता है। फिर ढोल बजाकर शिशु के शुभागमन की

सूचना दी जाती है।

लड़का पैदा हो अथवा लड़की, भील दम्पति दोनों स्थिति में अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। अन्य जातियों में लड़की पैदा होने पर कुछ मायूसी छा जाती है, क्योंकि दहेज का भयानक दानव मां-बाप को उसी समय ग्रसने लगता है। किंतु भीलों में ऐसी बात नहीं है। भील जाति में लड़की वाला लड़के वाले से दहेज लेता है। अतः लड़की पैदा होने पर भील दम्पति वही उछाह-उल्लास व्यक्त करते हैं, जो लड़का पैदा होने पर लोग करते हैं। भील बालक भी बड़ा होते ही घर संभालने लगता है। अतः लड़के को खुशी भी असीम होती है। दोनों स्थितियों में भील दम्पति के दोनों हाथों में लड्डू वाली कहावत चरितार्थ होती है।

प्रसूता स्त्री पाच दिनों बाद गर्म पानी से स्नान करके सूर्य को नमस्कार करती है, तथा तीर हाथ में लिये हुए गीतों के बीच पूजा-अर्चना करती है। पास-पड़ोस की स्त्रियां भी इस मंगल कर्म में उपस्थित रहती है। यही नहीं, बरन् शिशु-जन्म के बाद पड़ने वाली दीपावली पर बच्चे को मक्के के ढेर पर सुलाकर, आस-पास दीपक जलाकर, बच्चे की बुआ, सूर्य देव की आराधना करते हुए, बच्चे के कल्याण की कामना करती हैं। इसी अवसर पर बच्चे की मां पास में एक बांस का टुकड़ा गाड़कर उसके ऊपर अपना लहंगा टाग देती है और ऊपर से लोटा उल्टे मुंह लगा देती है। इस प्रक्रिया का तात्पर्य होता है धरती-आकाश के देवताओं की आराधना। पश्चात् गुड़ का प्रसाद बांटकर भील सब प्रकार के मंगल की कामना करते हैं।

भीलों की जितनी आस्था सूर्योपासना में है, उतनी ही आकाश के विविध नक्षत्रों के प्रति भी है। सप्तर्षि तारों के प्रति भीलों में अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं। अलीराजपुर क्षेत्र में ऐसी विचार-धाराएं प्रकट की जाती हैं कि इन सात नक्षत्रों में प्रारम्भ के चार नक्षत्र डोकरी मां की खाट के चार पावे है, पांचवा तारा 'बलद' और छठा तारा 'कूतरा' (कुत्ता) है। सातवां तारा चोर तारा है। बाग



व टांडा क्षेत्र के भील इन सात तारों को 'मशक' की उपमा से अलंकृत करते हैं।

बीहड़ वनों में निवास करने वाले भीलों के पास समय की जानकारी के लिए आकाश के तारे व मुर्गे की बांग आदि ही उपयुक्त साधन है। भोर में ही ये भील हल-बैल लेकर खेत पर जाने की तैयारी तारों को देखकर ही करते है। कितनी रात बीत गई कितनी बाकी है, यह सब पहिचान ये आकाशीय नक्षत्रों को देखकर ही करते हैं।

चन्द्रमा की चांदनी में 'रमते' हुए ये असीम आनंद की अनुभूति करते हैं। ढोलक की थाप पर थिरकते हुए इनके पैर पूरी रात नहीं थमते। स्त्री व पुरुषों के विभक्त समूहों में ये झूम-झूमकर चन्द्र-प्रकाश में नाचते है।

भीलों के इसी नृत्य कार्यक्रम में एक बार मैं भी अचानक पहुंच गया। पटेल के घर दो-चार दिन पहले शादी भी हुई थी। मुझे बड़े सम्मान के साथ इन भीलों ने बैठाया व अपने रीति-रिवाजों से परिचित कराया। देर रात तक इनके मधुर संगीत का आनंद भी मैंने उठाया। इनसे मैंने पूछा कि यह आप लोग क्या कर रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि हम 'रम' रहे हैं। संस्कृत के 'रमण' शब्द से साम्य करने पर इनके संगीत की ध्वनियों की अनुभूति मुझे वैदिक मंत्रों के आरोह-अवरोह का भान कराने लगीं। तथ्यतः यदि इस रहस्य को भाषा-विज्ञान की कसौटी पर परखा जाए तो अद्भुत उपलब्धियां संभव है।

'जय गणे बाप जी' अथवा 'जय गणे बावा' की ध्वनि के साथ ये भील शुभ कार्यों का प्रारंभ करते है। अर्थात् भगवान गणपति का स्मरण कर ये कार्य का श्रीगणेश करते है। कृषि इनके जीवन-यापन का प्रमुख आधार है। अतः अपने-अपने डूगरे (पहाड़ी) पर ये ढलान का उपयोग करते हुए 'जय गणे बाप जी' का स्मरण कर कृषि-कर्म प्रारम्भ करते है।

आचार-विचार-व्यवहार में भील बड़े भले, निश्छली, आत्मीय व विश्वापात्र होते है।[१] अंग्रेजों के समान ये पाबंद श्रमशील तथा मिलनसार होते हैं। जब भी दो भिन्न-भिन्न भील मिलते हैं तो 'शेक हैंड' की तरह ये तीन अंगुलियां एक-दूसरे से मिलाकर 'राम-राम' कहते है। कुछ भील गले भी मिलते है। भीलागनाएं भी नव-आगंतुकों के प्रति सिर चूम कर आस्था प्रदर्शित करती है। यह व्यवहार उम्र के अनुसार होता है। वृद्धा व बड़ी उम्र की औरतें सिर चूमती हैं,

---

१. नवभारत टाइम्स, बम्बई, दि० २२ अक्टूबर, १९७८।

गले लगाती हैं, सम्बन्धों के अनुसार गले में बाहें डालकर नृत्य करना भी इनकी विशेषता है। अपने लोकगीतों, लोकधुनों और लोकनृत्यों में ये मस्त रहते हैं। यौन-सम्बन्ध की शुद्धता इनकी सराहनीय है। अपनी जाति बिरादरी के साथ ही इनके यौन-सम्बन्ध होते हैं, बाहरी संबंध इन्हें पसंद नहीं। इसलिए वेश्यावृत्ति भीलों में नहीं है।[1]

भील-भीलांगनाएं दोनों ही चरित्र के बड़े पक्के होते हैं। अपनी जाति-बिरादरी में यदि किसी से गलत संबंध हो भी गये, तो खैर रही। पारस्परिक प्रेम को प्रश्रय अवश्य देते हैं, पर अन्य के साथ नहीं। वह भी मर्यादा के अनुसार। भील को यदि शंका हो गई कि उसकी औरत कुछ बुरे आचरण का पालन कर रही है, बस वह उसे खत्म ही करने पर तुल जाता है। ये अपने रीति-रिवाज के अनुरूप ही आचरण करते हैं।

१. ये आदिवासी भील हैं या अंग्रेजी—नवभारत टाइम्स, बम्बई, दि० २२ अक्टूबर, ७८।

वेशभूषा

पुरुषों का पहनावा

भीलों की पारम्परिक वेश-भूषा तनाव-खिचाव से उन्मुक्त, सहज, स्वाभाविक, सुखद, सरल और सस्ती है। सिर पर पगड़ी धारण करना तो अनिवार्य ही है और उस पगड़ी में नीम की डंठल खोस लेना, मानो सोने में सुगंध की श्रीवृद्धि है। पगड़ी या साफा प्रत्येक भील



की भव्यता को उजागर करने वाला प्रमुख पहनावा है। इसके विपरीत कमर में ये लंगोटी धारण करते हैं। घने पहाड़ी जंगलों में रहने

वाले भील केवल पतली लंगोटी ही पहनते हैं, जो उनके गुप्तांगों को ही ढकने में सक्षम होती है। किंतु कस्बों, बाजारों से संपर्क रखने वाले भील घुटने तक धोती पहन लेते हैं।



झूलड़ी[1] इनके विशेष व्यक्तित्व की परिचायक होती है, जो ग्रामीण दर्जी ही काले, सफेद व बहुरंगे धागों से बनाते है। पीठ और पेट को थोड़ा ढकने वाली यह झूलड़ी आगे से खुली रहती है, जिसमें बटन लगे रहते हैं। इनमें जेबें बनवाने का भी भीलों को बड़ा शौक रहता है। जेब में ये प्राय: बीड़ी और माचिस रखते है। बच्चों को भी ये झूलड़ी, साफा लंगोटी ही पहनाते हैं। इस झूलड़ी के पहनावे में प्राय: भड़कीला रंग ही पसंद किया जाता है। काले रंग की झूलड़ी

१. कुरता के स्थान पर प्रयुक्त वस्त्र।

पर सफेद रंग के धागों से बनी चित्रकारी इन्हें बेहद पसंद है।

तीर-धनुष भीलों का शृंगार है। अपनी सजावट की पूर्णता ये तीर-कामठी[1] के अभाव में अधूरी ही समझते है। तीर-कामठी से इनका अटूट संबंध है। यही कारण है कि तीरंदाजी में ये निष्णात होते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से भी भयानक जंगलों में भ्रमण करते हुए जंगली जानवरों का मुकाबला ये तीर-धनुष से ही करते है। शेर, बाघ, चीतों तक का शिकार ये तीर का निशाना साध कर करते है। इनकी अनूठी तीरंदाजी का निशाना कभी चूकता नहीं। विष-बुझे तीर का फाल शिकार के स्तर के अनुसार ही ये बनाते है। बास की कामठी (धनुष) भी बनाते हैं। तीरों का पिछला हिस्सा पक्षियों के पंखों से संवार देते है। एक या सवा फुट का तीर इनका बड़ा शक्तिशाली होता है, जो इस दोहे के उपमा से अलंकृत है।

सतसइया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखत में छोटे लगें, घाव करें गंभीर॥

भील तीर-कामठी को धारण कर बड़े गर्व की अनुभूति करते हैं। जब दारू का नशा रंग लाने लगता है तो किलकारी मारते हुए कहते है—

'हूं नाहर-रोकड्यो, कोकड्यो, बोकड्यो'

इस गर्वोक्ति का अर्थ है कि मैं शेर हूं, धनवान हूं, मुर्गी व बकरियों से सम्पन्न हूं। इसी सम्पदा का गुमान इन्हें जीवन भर साहूकारो के ऋण से मुक्ति नहीं दिला पाता। शराब की बुरी लत के कारण भील अपना सर्वस्व स्वाहा कर साहूकारों के शोषण में दम तोड़ देते हैं।

एक भील ७-८ तीरों को अपने पास रखता ही है। हां, इनकी इस वरीयता में 'एकलव्य'[2] का उपमान अद्‌भुत और अनूठा है।

---

१. धनुष के लिए ये कामठी शब्द का प्रयोग करते हैं।
२. (क) द्रोणाचार्य व एकलव्य, ग० वा० कवीश्वर, नई दुनिया।
(ख) एकलव्य के वंशधर, एम० एल० सोलंकी, नई दुनिया, ८-४-७६।

भील शर-संधान में अंगूठे का उपयोग नहीं करते, अपितु अंगूठे के पास वाली दो अंगुलियों का उपयोग हो तीरंदाजी में करके अचूक निशाना साध लेते हैं। एकलव्य ने दान में अंगूठा देकर एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया। संभवतः उसी का परिणाम आज भी भीलों की तीरंदाजी की अद्भुत प्रकिया है।

भील आभूषण-प्रेमी भी होते हैं। अपनी सज-धज में कथीर के गहने (जंजीर जैसा) ये कानों में धारण करते हैं। इन हाथों में कुछ लोग कड़े भी पहनते हैं, जो कथीर या चांदी के बने होते हैं। कुछ भील पैरों में भी एक-एक पतला कड़ा पहने हुए दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार की वेषभूषा (साफा, झूलड़ी, लगोटी, तीर-धनुष) में सुशोभित भील अपने प्राचीन आदर्श को अब भी बनाए हुए है। हां, अब नई जागृति की लहर में वे आधुनिकता में ढलने लगे है और पैंट, कोट, बुशर्ट, कुर्ता, धोती आदि धारण करने लगे है।

भीलांगनाओं का शृंगार संवार

भीलांगनाएं भी अपना सुघर-सलोना सौंदर्य संवारने में अत्यधिक रुचि लेती है। नारी-सुलभ स्वभाव के अनुरूप ही वे भी भड़कीला चटख कपड़ा ही पसंद करती हैं। लूगड़ा, घाघरा, और कांचली (साड़ी, पेटीकोट, व ब्लाउज) इनकी प्रमुख पोषाक है।

गुदावणो

गोदने से भीलांगनाएं बड़े गर्व का अनुभव करती हैं। गोदने गुदवाना इनका विशेष शौक है, इसे ये अपनी प्रचलित बोली में

(ग) एकलव्य के वंशधर कब तक भूखे रहेंगे, झाबुआ स्मारिका, श्री दिलीप सिंह भूरिया (विधायक)।

(घ) श्रीकृष्ण के पैर में भील का तीर ही उनकी मृत्यु का कारण बना। संभवतः उसी शाप से भील अंगूठे का प्रयोग नहीं करते, भीला, डॉ० एस० एल० डोशी।

'गुदावणो' कहती हैं। ग्रामीण वृद्धाएं प्रायः वालोर (सेम) अथवा विया का रस लेकर सुई या बबूल के कांटे से गुदने गोद लेती हैं व हाट-बाजारों में गुदने गोदने वाले विशेषज्ञ भी अपनी-अपनी दुकानें लगाकर बैठते हैं, जहां ग्रामीण भील स्त्रियां विविध आकृतियों के गुदने गुदवाती हैं।

गोरे गालों पर काले तिल जैसे 'गुदावणो' का बहुत महत्त्व है। भीलांगनाएं आंख के निचले भाग में दोनों गालों पर व दोनों कानों पर तथा होंठ के नीचे ठुड्डी (चिबुक) पर विशेष आकर्षण के गोदने गुदवाती हैं। स्त्री के सौंदर्य को द्विगुणित करने में गाल का तिल अपूर्व भूमिका अदा करता है। कविगण तो इस सौन्दर्य की वरीयता का बखान करते नहीं अघाते।

जब एक तिल की तुला पर तुलकर सौंदर्य गुरुतर हो छलक पड़ता है और कामिनी की कमनीयता को अतुलित निखार प्रदान करता है, तब भीलांगनाओं के गोरे मुखमंडल, गुलाबी गालों पर तिलों (गोदना) का समूह कितना सुशोभित होता है। इसी अनुभूति के अनुसार भीलांगनाओं की भावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है कि वे कितनी सजावट-प्रिय होती हैं।

आंख के पास प्रायः तीन तिल (नाक पर) दोनों तरफ गालों पर भी तीन तिल (त्रिभुज-आकार में) तथा होंठ के नीचे चिबुक पर सात-सात तिल गुदवाने को ये प्राथमिकता देती हैं। ये सात या नौ तिल समानान्तर तीन रेखाओं में ऊपर से नीचे की ओर रहते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के अन्य अंगों को संवारने में भी भीलांगनाएं 'गुदावणो' का प्रयोग करती हैं, जिनमें प्रमुख है 'बड़अरा' अर्थात् बाहें (अंगुली से बाह के बीच पर्याप्त गोदने गुदाये जाते हैं), हथेली, पैरों की पिंडलियां, छाती आदि।

गोदने गुदाते समय स्त्रियां गीत भी खूब गाती हैं। 'गुदावणो' में मयूर, अम्बा, छोवणी का दाणा, फूल, पान, तीर का आकार, कट्टावरी, बिछीया (बीमूड़ा) छितारा आदि की आकृतियां विविध अंगों पर गुदवाने की प्रथा है। पाव की पिंडलियों पर पान का निशान

गुदवाना (छोटे आकार में) इन्हें खूब पसंद है। आजकल तो बैटरी से चलने वाले यंत्र का प्रयोग गोदने गुदवाने में प्रयुक्त होता है।

गोदने की आकृतियों के कुछ प्रमुख प्रतीक इस प्रकार है—

आम्बा—इसे 'अम्वाड़ा' भी कहा जाता है। इस आकृति को उकेरने में रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। एक खड़ी रेखा पर पांच-पांच समानातर पड़ी रेखाएं, उकेरी जाती हैं। रेखाओं के दोनों छोरों पर दाने का चिह्न बना दिया जाता है। ऊपर जाने वाली रेखा के किनारों पर तीन-तीन बिन्दु बनायेजाते हैं। ऊपर की तीसरी रेखा पर पांच-पांच दाने मंदिर के आकार के उकेरे जाते हैं। रेखा के शिखर पर सात दाने बौराये हुए आम के द्योतक होते हैं। यह प्रेमाधिक्य की पराकाष्ठा का प्रतीक माना जाता है।

आम्बा मोर—चतुर्भुज के आकार का चिह्न शरीर के किसी भी वांछित अंग पर भीलागनाएं गुदने के रूप में गुदाती है। इसके अधोकोण पर उल्टा त्रिशूल उकेरा जाता है। चतुर्भुज के बीच के दोनों ओर छह्-छह् रेखाएं खींची जाती है तथा इन रेखाओ पर एक-एक दाना बना दिया जाता है। मयूर की आकृति भी विशेष आकर्षण के साथ उकेरी जाती है। मयूर मदोन्मत्तता का प्रतीक है। अत: भीलांगनाओं के लावण्य को लुभावना बनाने मे इस आकृति को पसंद किया जाता है। ये 'गुदावणे' माग, छाती, हाथ-पांव पर गुदाये जाते हैं।

कट्टावरी—इस प्रकिया में दोप्रकार के चित्र उकेरे जाते है। एक काणाकार तथा दूसरा दो उल्टे चतुर्थाश वृत्तों द्वारा बनाया जाता है। विविध रेखाओं और बिन्दुओं द्वारा यह गोदना भीलागनाओं के किसी भी वांछित अंग पर उकेरा जाता है। इसी आकृति में दुहरे चतुर्थाश वृत्तों को सटाकर भी बनाया जाता है। तिरछी रेखायें भी उकेरी जाती है। इस विवरण पर विस्तार से प्रकाश डॉ० नेमीचंद जैन ने अपनी पुस्तक 'भील-भाषा,साहित्य और संस्कृति' में डाला है।

छितारा—यह आकृति प्रायः हाथों पर गोदी जाती है। 'छितारा' दोहरी रेखाओं वाले दो मुखापेक्षी कोणों से बनता है। इसमें

वृत्त का भी उपयोग होता है। गोदने की आकृतियों में यह प्रकाशपुंज और नक्षत्र रश्मियों का प्रतीक है।

छोवणो के दाणे—यह ठुड्डी (चिबुक) पर होंठ के नीचे बिन्दुओं से उकेरा जाता है। इसमें नौ दाने प्रायः प्रयुक्त होते है।

मस्तक पर एक से लेकर इक्कीस तक दाने उकेरे जाते हैं। इसी प्रकार फूल, चोक, चोरल्या आदि की विविध आकृतियों से भीलांगनाएं अपने अंगों को सजाती-संवारती हैं। गुदावणो' गोदने का भीलों में खूब प्रचलन है। कुछ पुरुष भी गोदने गुदवाने के शौकीन होते है।

आभूषण

भीलांगनाओ के संवार-शृंगार में आभूषणों का विशिष्ट स्थान है। नख-शिख सौंदर्य को द्विगुणित करने में 'गुदावणो' जहां अपनी अभूतपूर्व भूमिका अदा करती है, वहीं कथीर, कासे व चादी के आभूषणो से लदी हुई भीलांगनाएं अरण्य की आदिकालीन उत्तमता को उजागर करती हैं।

भील युवती, प्रौढ़ा तथा कुछ वृद्धा स्त्रिया भी ऊपर से नीचे तक अर्थात् सिर पर खोसने वाले विविध आभूषणों से लेकर पैरों के कड़े, अगुलियों में बिछुए की वरीयता से मंडित होने में असीम गर्व का अनुभव करती है। भीलांगनाओं के विविध प्रमुख आभूषणों के नाम इस गीत में देखिये—

सोरी[1] मोरीला राली आव समदरिया वाट जोवे
सोरो ढाला बांधो आव समदरिया वाट जोवे
सोरी तागल्यो पेटी आव समदरिया वाट जोवे
सोरी वेदलियो पेटी आव समदरिया वाट जोवे
सोरी बोरडो पेटी आव समदरिया वाट जोवे
सोरी टीलडो राली आव समदरिया वाट जोवे

---

१. भील-भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ० नेमीचद जैन, पृ० १३१।

सोरी नाथड़ी पेटी आव समदरिया वाट जोवे
सोरी सूनड़ी आव समदरिया वाट जोवे

अर्थात् ए लड़की (सोरी-छोटी) ये-ये आभूषण पहनकर आओ, अमुक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। झांझरी, वीसुडी, तथा कडा इनके विशिष्ट आभूपण है। इसके अतिरिक्त हाथो में ये कलाई से लेकर कोहनी तक वड़ी-वड़ी चूड़ियां पहनती है। चूडियां भी रंग-विरंगी,चौड़ी, पतली अनेक आकारों की होती है। हाथ की अंगुलियों में चांदी की (वीटी) अंगूठी तथा अन्य हाथ की अगुलियों, विशेप रूप से दाएं हाथ की हथेली के पिछले भाग पर अनेक पतली-पतली जंजीर जैसे आभूपण तथा कुछ उभरे-उभरे गोल आभूपण भी ये धारण करती हैं। विशेप हर्पोल्लास के अवसर पर ये हाथो को उठा-उठाकर (दाहिने हाथ)वड़े आकर्पक आरोह-अवरोहों के साथ गाती व नाचती है। वाजूवंद जैसा उभरा-उभरा आभूपण वाहुओं में इन्हें खूव फवता है।

गले में हासली यथा ढेर सारे मूगे, नकली मोतियों व शीशे के हार पहनकर ये भीलांगनाएं जव नृत्य करती हैं तो उन्नत उरोजो पर उछलते हुए ये आभूपण कवि दर्शकों में कवित्व की भावना जागृत कर देते है। रीति कालीन व श्रृंगारिक कवियो की कल्पना को सम्वल प्रदान करने वाले ये उरोजों पर उभरे आभूपण अतीव आकर्पण उत्पन्न करते है।

गले से लेकर नाभि तक लटकते हुए विविध आभूपणों की वनावट, वारीकी और आकर्पक डिजाइनों को देखकर आश्चर्य होता है कि कितनी श्रम-साधना से इन्हें वनाया गया है। शीशे, मूंगे, घुमची व कितनी प्रकार के रंग-विरंगी वस्तुओं से वनाया हुआ इनका आभूपण छाती के उभार पर वेहद सुन्दर लगता है। इसी प्रकार गले में चिपका हुआ मूंगों की लड़ियों से वना आभूपण, पसीने की वूंदों व सूर्य की किरणों से इतना दमकता है कि उस दमक को कवि-कल्पना भी आकने में असमर्थता महसूस करने लगती है। इन आभूपणों की भव्यता का वर्णन करते हुए मेरी स्वयं की कलम भी थम-थम जा रही

है कि किसका वर्णन करूं और किसका न करूं।

सौंदर्य की अगली सीढ़ी पर इन भीलांगनाओं का लावण्य कपोलों पर लटकते हुए उन झुमकों मे झूलने लगता है, जो कपोलों को चूम-चूमकर निहाल हो जाते है, और कवि उस अतुलित सौंदर्य को तौलने में असमर्थ हो, हैरान हो जता है। भीलागनाएं कानों में कथीर व चादी की सिकड़ी, कर्णफूल तथा अन्य प्रकार के अनेक आभूपण पहनती है जो गले तक लटकता हुआ, सौदर्य को उजागर करता है। कान में कई छेद वनवाकर उनमे जो छोटे-वड़े आभूपण वे पहन लेती है, वे गले तक नोचे लटक आते हैं। उनसे उनका सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है।

केशों को संवारने की कला में तो ये अत्यधिक प्रवीण होती है। सिर में तेल के स्थान पर ये प्रायः घी का प्रयोग करती है। घी लगाने में इनका विचार है कि वाल अधिक सुन्दर लगते हैं। कभी-कभी गोंद का उपयोग भी ये करती है। महीने भर में एक या दो बार ही केश सज्जा करती है। संभवतः इसमें ४-६ घंटे लग जाते है। बालों को बारीक बुनाई के साथ इस प्रकार संवारती है कि आंधी-हवा मे भी वे नहीं उड़ते और जमे रहते है। बालों को इस जमावट पर वही चांदी, कथीर, कांसे की सिकड़ी (जंजीर जैसी) लटकती रहती है तथा (माथे पर) माग के बीचो-बीच उभरा हुआ 'बोर' नामक आभूपण रहता है। बोर के समीप से ही दाएं-वाएं खिचाव के साथ माथे के ऊपरी किनारे पर झुमकों के साथ लटकता हुआ आभूपण इनके सौंदर्य को द्विगुणित करता है।

'बोर' से आगे की ओर भौह तक लटकता हुआ माथे की बिन्दी को चूमता हुआ विशेप आभूपण इनके मुखमंडल को अत्यधिक मन-मोहक वना देता है। नाक के ऊपरी भाग और दोनों भौहो के बीच टीका या बिन्दी भो इनके सौदर्य को खूब संवारती है। नाक में 'नथड़ी' या कांटा (लवंग) का उभार भी इनके माधुर्य को मनमोहक वना देता है।

नख-शिख सौदर्य से सुसज्जित भीलांगनाएं जहा अकृतिमता के

कारण अपने लावण्य को लुभावना बना देती है, वहीं अरण्य का उन्मुक्त स्वच्छ वातावरण तथा कठोर श्रम उनके सुगठित शरीर को संवारकर उनकी छवि को छलका देता है।

ग्रामीण सुन्दरियां जब सज-धजकर झुंड की झुंड हाट-बाजार जाती हैं तो उनका भोला-भाला, अल्हड़ यौवन अपनी स्वाभाविक सुन्दरता से सराबोर बरबस ही आकर्षित कर लेता है।

अपराध-वृत्ति

भील अपने भेदन-क्रिया में पारंगत होने के कारण तीर-धनुष से ऐसा निशाना साधते हैं कि शायद ही कोई वार खाली जाये। अचूक निशाने पर बेधता हुआ उनका तीर अपराधों के क्षेत्र में इन्हें अग्रणी बनाये हुए है। झाबुआ जिले का आलीराजपुर क्षेत्र हत्याओं के मामले के एशिया का सर्वाधिक दैनिक हत्याओं वाला क्षेत्र माना जाने लगा। इस जटिल समस्या के समाधान हेतु मध्य प्रदेश शासन द्वारा एक आयोग गठित किया गया जो इस अपराध प्रवृत्ति के निवारण हेतु शासन को सुझाव दे सके।

आयोग का अध्ययन-दल जब आलीराजपुर पहुंचा व हत्याओं की अधिकता के विषय में जांच की तो आली राजपुर के डॉक्टर ने हत्याओं का प्रतिशत १.५ बताया।[1] यह प्रतिशत एशिया में सर्वाधिक है। इसी समस्या के समाधान हेतु 'आदिवासी विकास नीति निर्धारण आयोग' का भी जन-संपर्क इस क्षेत्र में हुआ और सभी ने समस्या के समाधान हेतु सुझाव दिये।

इस विषय पर हमें गंभीरता से विचार करना है कि 'झाबुआ' अपराध के मामले में प्रायः सबसे आगे क्यों रहता है।

झाबुआ जिले के भील तीर-कमान को अपना शृंगार समझते हैं। यही कारण है कि बच्चा बड़ा होते ही तीर-कमान संभालने में गौरव का अनुभव करने लगता है। तीर से हत्याओं की सर्वाधिक संख्या झाबुआ में ही आंकी गई है।

तीर-कमान द्वारा झाबुआ में हत्याओं का विवरण निम्नानुसार है—

---

१. नई दुनिया, इन्दौर, ५-१२-७०।

वर्ष	हत्यायें	तीर कमान से हत्याएं
१९६५	१२०	५४
१९६६	१३७	५६
१९६७	९९	४८
१९६८	१४९	७८
१९६९	१३६	५५
१९७०	१३६	७०
१९७१	१४४	६४
१९७२	१४६	६८
१९७३	११७	५०
१९७४	१७१	६५

झाबुआ के अपराध आंकड़े

१९७५ से १५ अगस्त, १९८२ तक

वर्ष	तीर द्वारा हत्या	फालिया द्वारा हत्या	तलवार से हत्या	दर्ज रिपोर्ट	अन्य अपराध
१९७५	५१	२७	१	११६	१९७५
१९७६	८१	२२	२	१३५	१६३६
१९७७	४६	२३	३	१२६	१७३६
१९७८	७२	५५	—	१८४	२१८४
१९७९	६८	३७	३	१५६	२४११
१९८०	७२	२८	५	१५१	२६६५
१९८१	६८	२८	३	१५५	२६५७
१९८२	५९	७	३	१३१	१९६०

हत्या के प्रयास

वर्ष	तीर द्वारा हत्या	फालिया द्वारा हत्या	तलवार से हत्या	दर्ज रिपोर्ट
१९७५	७२	२०	—	१०१
१९७६	७९	२३	१	११९
१९७७	३१	१५	—	६०
१९७८	६३	२२	१	९५
१९७९	४७	१८	—	७९
१९८०	६२	१७	—	८०
१९८१	५९	१७	१	८६
१९८२	१०१	८	—	११३

(पुलिस अधीक्षक झाबुआ के सौजन्य से प्राप्त)

कारणों के अनुसार हत्याओं का विवरण[1]

वर्ष	प्राप्ति के लिए हत्या	जमीन विषयक हत्या	व्यक्तिगत दुश्मनी से हत्या	यौन कारण से हत्या	एकाएक उत्तेजना से हत्या	अध-विश्वास से हत्या	अन्य कारणों से हत्या	योग हत्याओं का
१९७१	१२	१५	२७	१२	१६	१	५१	१४४
१९७२	९	१४	४३	१९	१७	७	४२	१४६
१९७३	४	१६	३२	९	११	३	४३	११७
१९७४	५	१४	४९	१३	२३	६	६२	१७१
१९७५	६	१६	१८	६	२५	३	३६	११६

१. पुलिस अधीक्षक झाबुआ से प्राप्त जानकारी।

इन [illegible] के कारण [illegible] विशेष [illegible] हैं [illegible] हैं—

(२) [illegible] है। [illegible] कुछ [illegible] इन [illegible] के [illegible] (छोटे-छोटे) [illegible] कि [illegible] को [illegible] हैं। [illegible]



क्योंकि यही उनका उपजाया हुआ प्रमुख अन्न है। भील दिन भर अथक श्रम करके मजदूरी में जो कुछ भी पाता है, उसमें से कुछ शराब [illegible] जो भी बचा उसकी मक्की ले आता है। मक्की को घर की घट्टी में भीलनी दल देती है अर्थात् मक्का छोटे-छोटे टुकड़ों में जब हो जाता है, तब उसे ये पानी में उबाल लेते हैं। उसी में थोड़ा नमक

और थोड़ी मिरची डालकर पतली-सी बनाकर पी जाते हैं। इसी भोज्य पदार्थ को ये 'रावड़ी' कहते है।

जो लोग कुछ सम्पन्नता का अनुभव करते हैं, वे उसी मक्के की रोटी बना लेते हैं, तथा नमक-मिर्च के साथ खाकर सो जाते हैं। नाचते-कूदते हैं और मौज-मस्ती का अनुभव करते है।

पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए ये अथक श्रम करते है। मेहनत में ये आलस नही करते, पर मजबूर हैं कि इनकी जमीन कंकरीली-पथरीली तथा ऊबड़-खावड़ है जो वर्षा पर ही निर्भर है। सिंचाई-साधनों का तो प्रश्न ही नही होता। अब कुछ विकास हो रहा है। पहाड़ियों पर बसे भील अपनी झोंपड़ी के आसपास ही पथरीली जमीन में मक्का की प्रमुख फसल बो देते हैं। वह भी प्रायः अतिवृष्टि या अनावृष्टि से प्रभावित हो नष्ट हो जाती है। अतः परिस्थितियों से ग्रसित भील अपराध की ओर उन्मुख होते है।

अन्य कोई साधन इनके जीविकोपार्जन का नहीं होता, जिसपर ये पेट पाल सकें। इनके घर भी घास-फूस के बने होते हैं जिसमें एक-दो मिट्टी के बर्तन, मिट्टी का तवा, पानी निकालने के लिए लौकी के सूखे फल का कढ़वा, आटे का एक डब्बा, घट्टी, तथा कुछ मुर्गे-मुर्गियां, एक-दो बकरी होती हैं, यही इनकी पूंजी है।

झाबुआ के आली राजपुर क्षेत्र में आज भी भील केवललंगोटी ही पहनते हैं जो केवल उनके अग्रिम गुप्तांग को ही ढकती है। शेष सारा शरीर खुला ही रहता है। हां, सिर पर फटे-पुराने चिथड़ो की पगड़ी तथा हाथ में तीर-कमान अवश्य रहता है। अत्यधिक अभाव की जिंदगी गुजारते हुए भी ये विहंसते-नाचते-गाते रहते है पर जब पेट के लिए रोटी की समस्या खड़ी हो जाती है, तब ये मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं।

अपराध के मामलो में यदि इन्हें जेल भी हो जाती है तो इन्हें नहीं अखरता क्योंकि जेल का जीवन घर के जीवन से अच्छा व्यतीत होता है। दोनों समय भोजन तो मिल ही जाता है इसलिए जेल का इन्हें भय बिल्कुल नही रहता।

१६७६ में आलीराजपुर क्षेत्र में एक ऐसी योजना चलाई गई जिसमें आदिवासियों के कार्यरत रहने (मजदूरी) तथा बिना काम के निठल्ले रहने के प्रतिशत का अन्दाजा लगाया गया। इस परीक्षण से यह तथ्य सामने आया कि यदि इन भीलों को मजदूरी मिलती है, पेट भरता है, तो अपराधों का प्रतिशत घट जाता है, किंतु जब इसके प्रतिकूल परिस्थिति होती है तो अपराध बढ़ जाते हैं।

(२) जमीन, गहनें, पेड़ आदि गिरवी रखने के कारण भी आदिवासीहत्या पर तुल जाते हैं। प्रायः उनकी जमीन साहूकार या गैर आदिवासी गिरवी रख लेते है। ब्याज असीम गति से बढ़कर उन्हें दबोच लेता है। इससे घुटन महसूस कर वह अपराध कर बैठता है। उसके सगे-सम्बन्धियों से भी कुआं, पेड़, जमीन आदि का झगड़ा हत्या में



परिणत हो जाता है।

(३) व्यक्तिगत दुश्मनी में भी भील लोग बिना कुछ सोचे-समझे तीर चलाकर दुश्मन की हत्या करने में नहीं हिचकते। दुश्मनी किसी भी कारण से पैदा हो जाती है।

(४) आली राजपुर हत्याबहुल क्षेत्र ताडियों के लिए प्रसिद्ध है। ताडी पीकर नशे मे किलकारियां मारना इनका एक शौक है। प्रायः ताड़ के पेड़ों पर चढ़कर ये ताड़ी उतारते हैं। इसी बीच यदि ताड़ के पेड का मालिक अथवा अन्य कोई प्रतिपक्षी आ गया तो वह बिना कुछ सोचे-समझे ही ताड़ पर चढ़े हुए व्यक्ति को तीर का निशाना बना देता है। बस, अनायास ही हत्या का प्रकरण आ गया।

(५) भील वडे भावुक होते है। शराब पीना तो इनकी अपनी ही विशेषता है। नशे में धुत ये कौतुक-प्रियता में ही तीर चला देते है। इनका यह घातक आयुध जिसे लग गया, वह सीधे मौत के मुंह में चला जाता है। बचना तो बड़ा मुश्किल ही होता है।

(६) अज्ञानता के कारण भी ये मानव जीवन की महत्ता को न समझकर जरा-जरा-सी बात में तीर चला देते है या धारिये[1] से हमला कर देते हैं, जिससे हत्या हो जाती है।

(७) यौन-सम्बन्धों के कारण भी प्रायः हत्याएं होती रहती है। भील बड़े सवेदनशील होते है। उनकी पत्नी का यदि किसी से प्रेम हो गया और वे उसे जान गये तो बस हत्या पर उतारू हो जाते है। अपनी लुगाई (पत्नी) के प्रति भील बड़े आसक्त होते है, किंतु चरित्र की जरा-सी भी शंका उन्हें पागल बना देती है। वे आवेश में पत्नी-व प्रेमी दोनों को ही मार डालने में नहीं हिचकते। कभी-कभी व्यवधान उपस्थित होने पर भी ये हत्या कर देते है।

(८) जादू-टोने के कारण भी प्रायः हत्याएं हो जाती है। भील बडवा (भोपा) पर पूरा विश्वास करते हैं। कभी-कभी बीमारी या अन्य परेशानियो में उलझे हुए भील को यदि बड़वा कह देता है कि

१. लोहे का घातक हथियार।

अमुक व्यक्ति द्वारा तुम्हारे ऊपर जादू-टोना किया गया है, तो भील उत्तेजित हो जाता है और अमुक व्यक्ति की हत्या कर देता है।

(९) प्रायः लूट-खसोट करते समय उन व्यक्तियों को भी पीटने में ये गौरव का अनुभव करते हैं जिन्हें वे लूट रहे हों। भीलों को यदि वह व्यक्ति अपनी सामग्री सहर्ष सौंप दे और कहे कि मुझे मारो मत, सब धन-कपड़े ले लो, पर भील लुटेरा गर्व से कहता है कि मैं फोकट में नहीं लूंगा, बल्कि मेहनत करके तुमसे लूंगा। ऐसा कहते हुए वह सब कुछ छीन भी लेता है और मार-मारकर हालत खराब कर देता है। इस उन्मादपूर्ण अज्ञानता के कारण भी हत्याएं हो जाती हैं।

(१०) बदले की भावना भी भीलों में घर कर जाती है। यदि किसी प्रतिद्वन्द्वी से वे बदला लेने की ठान लेते हैं तो कैसी भी जटिल परिस्थिति क्यों न हो, वे उसे समाप्त करके ही दम लेते हैं। यह उनकी जिद, वैर बनकर हत्या का कारण बन जाती है। लंबा समय व्यतीत हो जाने पर भी बदले की भावना वे नहीं भूलते।

(११) भीलों को निकटस्थ व्यापारी वर्ग खूब चूसता है। अपने खून-पसीने की कमाई गंवाने में शोषकों के प्रति उनमें घृणा पैदा हो जाती है। बस वे उसे खतम करने की ही ठान लेते हैं। प्रायः वन विभाग, पुलिस विभाग, आबकारी विभाग के शासकीय कर्मचारियों को भी वे इस भावना से मार देते हैं, जबकि सीधे-सादे अध्यापक को वे बड़ा आदर-सम्मान देते हैं।

(१२) भीली क्षेत्र में हत्याओं का एक प्रमुख कारण यह भी है कि वे जंगलों की पहाड़ियों पर बिखरे-बिखरे रूप में झोंपड़ी बनाकर ये रहते हैं। सामूहिक बस्ती में भील रहना पसंद नहीं करते। इस स्थिति के कारण आक्रामक या लुटेरे भील जिस किसी प्रतिद्वन्द्वी या दुश्मन भील का जब कत्ल करना चाहते हैं तो उस पर रात को अचानक हथियारों से लैस हमला बोलकर हत्या कर देते है। वहां स्फुट बस्ती के कारण कोई बचाने वाला भी नहीं पहुंच पाता, परिणामतः आक्रामक लुटेरे हत्या करके भाग जाते है।

(१३) हाट-बाजारों, मेला-उत्सवों में भी प्रायः हत्या की विशेष

घटनाएं घट जाती हैं। ये आदिवासी जब सामूहिक नृत्य-गान आदि शराब के नशे में करते हैं, या भगोरिया-गुलालिया पर्व पर किसी से जरा-सी भी अनबन हो गई, फिर क्या कहना, ये उस रंगारंग कार्य-क्रम की परिणति हत्या में बदल देते है।

(१४) मामूली बात को लेकर भी ये हत्याएं करने से नही चूकते। ये महुआ, डोली के लिए भी तकरार कर बैठते है। किसी ने किसी का महुआ बीन लिया, उसी समय महुवे के पेड़ का मालिक आ गया तो बस सनसनाता हुआ ऐसा तीर छोड़ेगा कि वह वहीं धराशायी। महुए की शराब उतारते व पीते हुए झगड़ा, फिर हत्या हो जाती है।

मानव जीवन की महत्ता से ये अनभिज्ञ हैं, इसलिए जरा-जरा-सी बात पर मरने-कटने पर उतारू हो जाते है। हत्या करना इनके लिए खिलवाड जैसा भी है। पुलिस अधीक्षक झाबुआ ने एक घटना का उल्लेख किया कि एक बार भील ने किसी पुलिस कर्मचारी को भोजन हेतु आमंत्रित किया। जब अधिकारी भोजन करने पहुंचा, तो उस भील ने खूब स्वागत सत्कार किया, किंतु कुछ देर बाद जब पुलिस कर्मचारी ने उस को धारिये आयुध को रगड़ते देखा, तो भांप गया कि वह क्या चाहता है। उस भील ने अपने विचार भी व्यक्त किये कि उसे मारने में मजा आता है। पुलिस कर्मचारी बचकर भाग निकला। आलीराज-पुर क्षेत्र में ही एक बार पुलिस दल पर ही इन लोगों ने हमला कर दिया था। इस घटना का समाचार सुनकर हमारे क्षेत्र में आतंक फैल गया था। तात्पर्य यह है कि इन भीलों को हत्या करना एक सामान्य बात महसूस होती है।

भीलों की अपराध-प्रवृत्ति को किस प्रकार बदला जाए, यह एक चुनौती भरी समस्या उस क्षेत्र की पुलिस के सम्मुख रही है। प्रशासन भी बड़ी सतर्कता से इनकी देख-रेख करता है, पर हत्याएं होती ही रहती हैं, झाबुआ जिला आज भी अपराध के मामले में सबसे आगे है।[1]

१. (क) दैनिक भास्कर (भोपाल), दि० १२-३-८१।
(ख) नवभारत (भोपाल), दि० ३-३-८२।

१६३६ में वेरियर एलविन ने मध्य प्रदेश के आदिवासियों पर वहुत कुछ लिखा था। वेंगा जाति पर तो उनका शोध-प्रवंध वहुत ही प्रशंसनीय रहा जव कि इसी क्रम में १६४२, १६४३, १६५० में उन्होने माड़िया व मुड़िया जन-जातियों पर भी शोध-पुस्तिकाएं लिखी। इन शोध-प्रवंधों में उन्होंने आदिवासियों की संस्कृति पर तो विस्तार से प्रकाश डाला ही, साथ ही हत्याओं से सम्वन्धित परिस्थितियों पर भी वहुत विस्तार से प्रकाश डाला। आज भी इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य हो रहा है, किंतु इनकी दशा व आज के विकासात्मक वढ़ते चरण को देखते हुए और अधिक शोधात्मक व सुधारवादी कार्य की आवश्यकता है।

अपराध प्रवृत्ति के समाधान हेतु सुझाव

(१) झाबुआ जिले की विशेष स्थिति इसके लिए अभिशाप वनी हुई है। यहां की ऊवड़-खावड कंकरीली-पथरीली जमीन पर एक तो अन्न पैदा नहीं होता, यदि भील कठोरतम श्रम से मक्का वगैरह वोते भी हैं तो अनावृष्टि या अतिवृष्टि से वह फसल चौपट हो जाती है। अनावृष्टि के समय सिंचाई की समस्या के समाधान हेतु कृषि उत्पादन के उपाय, खिंचाई की सुविधाएं, कुएं-तालाव, वाध, नहर तथा आधुनिकतम कृषि-उपकरणों को सुलभ कराना इनके लिए अपराध से मुक्ति हेतु वरदान वन सकता है।

(२) सुदूर ग्रामीण अंचलों में शिक्षा का अभाव अत्यधिक अखरने वाला है। प्रायः ग्रामीण स्कूल टूटे-फूटे टापरों में लगाये जाते हैं। वहां शिक्षकों के रहने की उचित व्यवस्था न होने से शिक्षक निकट रहने वाले वाजार में रहना अधिक पसंद करते है। अतः स्कूल से जल्दी से जल्दी भागना शिक्षक का प्रमुख लक्ष्य रहता है न कि वच्चों को पढ़ाना। शिक्षकों की दशा वड़ी चितनीय है। वीस वर्षों तक मैंने स्वयं भीली क्षेत्र झाबुआ में पढ़ाया है। उस अनुभव को यदि लिपिवद्ध करूं तो एक वड़ी पुस्तक वन सकती है। कटु सत्य की कड़वाहट कुनैन की तरह लाभप्रद हो सकती पर...। संक्षिप्त रूप से

मैं यही कहूंगा कि भीली क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार आवश्यक है। शिक्षित भील से अपराध की आशा कम ही की जा सकेगी।

(३) भील प्रायः सामूहिक वस्ती में रहना पसंद नहीं करते। बीहड वनों में छिट-पुट झोंपडियां बनाकर ही वे रहते हैं। जो कृषि-कर्म करते हैं, वे अपने-अपने खेतों में झोंपड़े वनाकर रहते हैं। ऐसे एकांत-प्रिय स्थान पर डाकू, चोर, प्रतिद्वन्द्वी, दुश्मन आसानी से हमला करके किसी भी परिवार को नुकसान पहुंचाने में नहीं चूकते। यदि वे सामूहिक रूप में रहते तो पड़ोसी और गाव के लोग उनकी मदद को दौड़ते। अतः प्रयत्नपूर्वक इन्हें वस्ती के रूप में रहने की आदत डालना चाहिए।

(४) भीलों का शृंगार तीर-धनुप उनके लिए यदि असीम थाती है तो हत्याओं के लिए यह आयुध सर्वाधिक खतरनाक है। तीरंदाजी में भील वेहद पारंगत होते है और एकलव्य के वंशज के रूप में प्रसिद्ध हैं पर उनका अचूक निशाना ही हत्याओं के लिए प्रमुख कारण है। इसे धारण करना यदि बन्द हो सके तो हत्याओं में एकदम कमी आ जायेगी।[2]

---

२. नई दुनिया, इन्दौर।

भीलबहुल झाबुआ

भील जाति की सबसे अधिक आबादी वाला जिला झाबुआ भारत के मानचित्र पर जहां अपने पिछड़ेपन के लिए प्रसिद्ध है, वहीं अपराध के क्षेत्र में भी इसकी प्रथम स्थान पर गणना है। इस अपराध (हत्याओं) के अतल को थहाकर समाधान का हल निकालना आवश्यक है। भील जाति ही इतनी अपराधी क्यों है ?

भीलों की सर्वांगीणता को समझने के लिए झाबुआ के विषय में जानना अति आवश्यक है जहा ८५ प्रतिशत भील रहते हैं। इस ग्रंथ की पूर्णता बिना झाबुआ की झलक के अधूरी ही मानी जायेगी क्योंकि झाबुआ ही वह सूर्य-पिण्ड है जिसके चारों ओर भील जाति की भव्यता नक्षत्रों के समान घूमती रहती है। अतः तत्संबंधी संक्षिप्त जानकारी यहां प्रस्तुत है।

मध्य प्रदेश का यह सीमात जिला २१.५५' से २३.४' उत्तरी अक्षांश तथा ७४.३' से ७५.१' देशान्तर रेखाओं के मध्य स्थित है। इसकी समुद्र तल से ऊंचाई ४२८ मीटर है।

मुगल शासन काल, में सन् १५८४ ई० में श्री केशोदास राठौर ने, जो जोधपुर के विख्यात शासन जोधा जी के प्रपौत्र थे, झाबुआ राज्य की स्थापना की। इनके पूर्व झाबुआ राज्य में झब्बू, भग्गा, रामा आदि नायकों का आधिपत्य था। इन नायकों पर श्री केशोदास ने विजय प्राप्त की तथा राठौर वंश का आधिपत्य स्थापित किया। सन् १९४८ में देशी रियासतों के विलीनीकरण के साथ ही इस राज्य का भी विलीनीकरण भारतीय गणराज्य में हो गया।

इसीप्रकार आली राजपुर भी स्वतंत्र राज्य था, जहां राठौर

---

१. झाबुआ जिले का आदिवासी-जन-जीवन—एक अध्ययन, १९७३-७४, वार्षिक निबंध, जिला सांख्यिकी कार्यालय झाबुआ।

वंश के ही दीपसेन जी की २१वीं पीढ़ी में उदेदेव उर्फ आनंद देव हुए। इन्होंने १४३७ ई० में आली स्थान पर किले का निर्माण कराया। १८०० ई० में राजधानी आली से राजपुर लायी गई। तभी से यह आलीराजपुर हो गया। उदेदेव के दो प्रपौत्रों में से श्री गूगलदेव आलीराजपुर के राजा हुए तथा श्री केसरदेव अलग जोवट राज्य के राजा हुए।

भारतीय गणराज्य में जब रियासतों का विलीनीकरण हुआ तब झाबुआ, आली राजपुर, जोवट, पेटलावद और थांदला को तहसीलों का दर्जा देकर झाबुआ जिला बना दिया गया। कट्ठीवाड़ा और मथवाड़ रियासत तथा इन्दौर राज्य की पेटलावद तहसील भी इसमें मिला दी गई।

झाबुआ जिले के उत्तर में राजस्थान व रतलाम तथा दक्षिण में महाराष्ट्र व खरगोन, पूर्व में धार जिला तथा पश्चिम में गुजरात प्रान्त की सीमा है। इस जिले में पांच तहसीलें झाबुआ, आली राजपुर पेटलावद, जोवट और थांदला है। इस जिले की प्रमुख नदियां नर्मदा, माही और अनास है।

इस जिले की जलवायु सम-शीतोष्ण है। वर्षा का औसत ७८७ मि० मीटर है। ९८% वर्षा जून से सितम्बर के मध्य हो जाती है। पांचो तहसीलों की अपेक्षा कट्ठीवाड़ा में अधिक वर्षा होती है क्योंकि वहां घने जंगल है।

झाबुआ की भूमि पथरीली-कंकरीली है। इसलिए उपज बहुत ही कम होती है, वह भी काली व भूरी मिट्टी में, अब अन्धाधुन्ध वनों की कटाई के कारण भूमिक्षरण अधिक हो गया है। इससे बचाव के लिए जिले में मेड़ें, पाले आदि की योजनाएं क्रियान्वित है। मक्का, ज्वार, धान, बाजरा, मूगफली कपास की खेती होती है। प्रमुख फसल मक्का है। गेहूं, चना, तुअर भी कम मात्रा में होती है।

खनिज सम्पदा इस जिले में पर्याप्त है। मैंगनीज, बाक्साइट, फास्फेराइट, सोपस्टोन, माइका तथा अन्य प्रकार के बहुमूल्य पत्थर हैं।



इमारती व जलाऊ लकड़ी पर्याप्त माला में यहां पाई जाती हैं। आलीराजपुर क्षेत्र (कट्टीवाड़ा)में घने जंगल है, जिनमें गोंद, महुआ, रोशा, चिरौंजी आदि प्राप्त होते है। भील इन्हें बेचकर अपना खर्च चलाते है। ताड़ी भी खूब होती है, जिसे वे पीते हैं और बेचते भी हैं।

१९७१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार झाबुआ जिले की कुल जन संख्या ६,६७,८११ है। इसमें पुरुष ३,३९,२२६ तथा स्त्री ३,२८,५८५ हैं। जिले की ग्रामीण जनसंख्या ६,१८,९८८ तथा नगरीय जनसंख्या ४८,८२३ है। इसी प्रकार कुलज नसंख्या में कार्य-

शील जन संख्या केवल १,६,८६१ तथा अकार्यशील ४,६६,६२० है प्रति हजार पुरुष पर ६६६ महिलाएं है।

झाबुआ की कुल जन संख्या में से कार्यशील कृषकों की संख्या १,५६.५०० है जो कि कुल जनसंख्या का २३.८८ प्रतिशत है। इसी प्रकार कार्यशील कृषकों का प्रतिशत कुल कार्यशील जन संख्या के ८०% है। कृषि मजदूरों की संख्या १६,८७४ है जो कुल कार्यशील जनसंख्या का ८.६% है। अन्य कार्यशील जनसंख्या २,१,१७ है तथा इनका प्रतिशत कुल कार्यशील जनसंख्या के ११.६% है। आश्चर्य का विषय तो यह है कि भारी खनिज-सम्पदा के बावजूद भी झाबुआ में पत्थर तोड़ने वाले नगण्य हैं। हां, अब यह संख्या बढ़ गई है।

झाबुआ जिले की जनसंख्या का घनत्व ६६ प्रति वर्ग किलोमीटर है, जो कि १६६१ में ७६ प्रति वर्ग किलोमीटर था। इस जिले की जनसंख्या का वृद्धिदर १६६१-७१ पर २६.८३ है (दस वर्षीय)। यह जनसंख्या वृद्धि-दर ग्रामीणों में जहां २६.३२ है, वहीं शहरी क्षेत्र में ३६.६६ है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि-दर ग्रामीणों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्र में अधिक है फिर भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण नगरीय क्षेत्र में जनसंख्या का प्रतिशत कुल जनसंख्या से १६६१ की अपेक्षा कुछ अधिक है। १६६१ की नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत कुल जनसंख्या से ६.६५ था जो १६७१ मे ७.३१ हो गया।

१६७१ में झाबुआ जिले की कुल शिक्षित व्यक्तियों की संख्या ५४,६५७ थी जिसमें ३६,८७६ पुरुष तथा १५,०८१ महिलाएं थी। इसी प्रकार नगरीय क्षेत्र में शिक्षितों की संख्या जहां ३१,५०३ रही है, वही ग्रामीण क्षेत्र में यह केवल २३,४५४ है। कुल जिले की जन-संख्या के मान से शिक्षितों का प्रतिशत ८.२१ है जिसमें पुरुषों का ११.७२ प्रतिशत तथा महिलाओं का ४.५६ प्रतिशत है। १६६१ की साक्षरता से तुलना करने पर भी साक्षरता का प्रतिशत अधिक संतोष प्रद प्रतीत नहीं होता। क्योंकि १६६१ की कुल जनसंख्या से जिले के साक्षर लोगों का प्रतिशत ६.०५ प्रतिशत था जो वृद्धि होकर ८.२१

हो गया। पुरुषों का प्रतिशत १९६१ में ९.०६ था जो १९७१ में ११.७२ प्रतिशत हो गया, तथा महिलाओं का प्रतिशत २.९० प्रतशित था जो १९७१ में वृद्धि होकर ४.५९ हो गया। जिले की कुल जन-संख्या मे से साक्षरता का जो प्रतिशत ८.२१ रहा वह मध्य प्रदेश के सभी जिलों की अपेक्षा कम है। अर्थात् मध्य प्रदेश के सभी जिलों की अपेक्षा झाबुआ जिले में साक्षरों की जनसंख्या सबसे कम है। १९८१ की जनगणना में भी झाबुआ का प्रतिशत सबसे कम है। साक्षरता में पुरुषों का प्रतिशत १५.५४ है।

आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति

आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्था, मध्य प्रदेश, भोपाल द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार झाबुआ जिले के आदिवासियों की आर्थिक स्थिति बेहद चिंतनीय है । मई-जून १९६४ की रिपोर्ट में ६६ प्रतिशत आदिवासी परिवार ऋणग्रस्तता के शिकार थे। इसी क्रम में औसत प्रति परिवार ऋणग्रस्तता २६६.१७ रु० आंकी गई। उत्पादन कार्यों के लिए लिया गया ऋण ३५ प्रतिशत तथा अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण ६५ प्रतिशत था। अनुत्पादक ऋण का ३२ प्रतिशत घरेलू कार्यों के लिए था, शेष धार्मिक व अन्य खर्चों में सम्मिलित था । इस ऋण पर ब्याज की दर अत्यधिक शोषणात्मक रही ।[1]

१९६६ में उक्त शोध संस्थान द्वारा झाबुआ के अत्यधिक पिछड़े इलाके कट्ठीवाड़ा विकास खण्ड के १० गांवों का सर्वेक्षण किया गया था, जिसमें ६३ आदिवासी परिवारों की आर्थिक स्थिति आंकी गई। परिणामत: एक आदिवासी परिवार की औसत आय रु० ७७३-८३ रही, जबकी उसका औसत व्यय रु० १२१९.१५ होता है। यह आय और व्यय का असतुलन आदिवासियों की भयंकर ऋण-प्रस्तता का सूचक है।[2]

आदिवासियों की ऋणग्रस्तता से मुक्ति के लिए मध्य प्रदेश शासन द्वारा ५ अगस्त १९६३ को 'आदिवासी-ऋण निवारण कानून' लागू किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत ऋण-मुक्ति का पर्याप्त प्रयास हुआ। किंतु स्थिति में आशा के अनुरूप सुधार नही हुआ।

---

१. झाबुआ जिले का आदिवासी जन जीवन—एक अध्ययन, वार्षिक निबंध १९७३-७४ जिला सांख्यिकी कार्यालय झाबुआ।

२. वही।

इसी सन्दर्भ में 'इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक-ओपिनियन' ने मई-जून १९७४ में एक विस्तृत सर्वेक्षण आयोजित कर ३८० आदिवासी परिवारों का सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि ७७% परिवार ऋण-ग्रस्तता के शिकार हैं। प्रति परिवार औसतन ४३४ रु० ऋण है। इसी क्रम में ज्ञात हुआ कि लगभग ३०% ऋणी व्यक्ति २५% वार्षिक ब्याज की दर तथा ४५% व्यक्ति ५०% प्रति वर्ष की दर से एवं ११% व्यक्ति १००% ब्याज की दर का भुगतान वस्तुओं के रूप में करते हैं।

झाबुआ जिला मुख्यालय, तहसील व अन्य प्रमुख-प्रमुख स्थानों पर साप्ताहिक हाट-बाजार लगते हैं जिनमें आदिवासी अपनी कृषि उपज, वनोपज आदि का क्रय-विक्रय करते है। 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपीनियन' द्वारा १९७२-७३ में इस विषयक एक सर्वेक्षण किया गया था, जिसके अनुसार कृषि-उत्पादन तथा हाट-बाजार में विक्रय का निम्न विवरण है—

कुल कृषि-उत्पादन व हाट-बाजार में विक्रय

सामग्री	कुल उत्पादन (क्विटल)	विक्रय वस्तु की मात्रा १९७२-७३	वस्तु उत्पादन से विक्रय किये गये का प्रतिशत
कपास	८६,४००	३५,०००	४०
मूंगफली	१,३८,०००	१,००,०००	७२
तुअर	२९,०००	१७,५००	६०
उड़द	५७,०००	४०,०००	७०
अरण्डी	१,०००	१,०००	१००
चना	२७,०००	१३,०००	४८
मक्का	६,९०,०००	१,१५,०००	१६.६

इस अतिरिक्त सामग्री का संग्रह साहूकार करते हैं, जो बाद में भारी मुनाफे लेकर पुनः इन्हें बेचते हैं।

आदिवासियों का भयंकर शोषण व्यापारी वर्ग करता है, जो हाट-बाजारों में उनकी सामग्री क्रय करता है। यह क्रय फुटकर होता है। जो आदिवासी के लिए काफी नुकसानदायक है। उक्त सर्वेक्षण में इस तथ्य की भी परख की गई है, यथा—

कृषि उत्पादन का थोक मूल्य व फुटकर मूल्य

औसत दर १९७३-७४

सामग्री		क्विंटल में		%	% भावों में अन्तर
१	२	३	४	५	६
	हाट के भाव	थोक बाजार के भाव	फुटकर बाजार के भाव	क्र० २ से क्र० ३ को लाभ	क्र० २ से क्र० ४ तक लाभ
कपास	३००	३३०	४४०	+१०	+३३
मूंगफली	१९२	२३७	३२५	+२३	+६९
तुअर	१४५	१४७	१६५	+ १	+१३
उड़द	१६७	१९५	२५०	+१६	+५०
अरण्डीबीज	१५५	१७५	२००	+१३	+२९
चना	१८०	१००	२१०	+ ५	+१७
मक्का	१५५	१७०	१७५	+ ९	+१३

इन आंकड़ों से ज्ञात होता है कि आदिवासी कितना अधिक घाटे में रहता है।

ये आकड़े क्रेता व्यापारियों से प्राप्त किये गये है न कि विक्रेता आदिवासियों से । अतः शोषण का अनुमान लगाना कठिन है। वस्तु विनिमय को यही प्रक्रिया आदिवासियों को कंगाल कर रही है ।[1]



१. 'झाबुआ जिले के आदिवासी जन-जीवन का अध्ययन' वार्षिक निबंध, १९७३-७४, प्राप्त जिला सांख्यिकी कार्यालय झाबुआ ।

प्रति परिवार वार्षिक आय, व्यय तथा ऋणग्रस्तता

परिवार आय समूह (रु०)	प्रति परिवार औसत वार्षिक आय तथा उसका स्रोत				प्रति परिवार वार्षिक व्यय			दीर्घ ऋणग्रस्त परिवार	ब्याज की दर जो साहूकार को दी जाती है तथा परिवार द्वारा का प्रतिशत			परिवार को मकान निर्माण सहकारी समिति का अंश ऋण लिया
	कृषि	कृषि मजदूरी	ग्रामीण मजदूर	अन्य								
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
१०० से कम	८१०	४५० (५५.६)	२८७ (३५.४)	७३ (९.०)	२३८०	१८७० (७७.१)	५१० (२२.७)	८५१	१९३	४५.७	८६	११.८
१००१ से १५००	११६५	६६७ (५८.१)	३५८ (३०.८)	१३३ (११.१)	२५१८	१९११ (७५.६)	६० (२४.१)	६०३	१६.२	५००	७३	२१.५
१५०१ से २०००	१३२८	६६१ (५५.४)	३३० (३०.४)	२४७ (१६.३)	२७११	२०१६ (७४.५)	६९७ (२५.५)	६०६	१६.३	६२१	७.७	१०.०
२००१ से २५००	२३५२	११८५ (५१.५)	६५२ (२८.०)	२१९ (९.५)	३३९०	२२८७ (६१.५)	९९६ (३८.५)	५६८	३.६	५६.६	९१	१२७
२५०१ से ३०००	२७००	१८५२ (६८.६)	६०७ (२२.५)	२४१ (८.९)	३६००	२३३५ (७१.०)	१८९५ (२९.०)	५००	३.९	३३.१	२९५	१२.१

३००१ से ३५००	३२२६	१७४३	१०१३	४५५	४०८६	२८८०	१२०६	४३०	११.४	४२.६	११.४	३४.३
		(५४.०)	(३१.६१)	(१४.१)		(७०.४)	(२६.६)					
३५०१ से ४०००	३७६८	२३६५	१०१३	३६८	४४६५	३१३३	१३६२	४७१	२१.४	४२८	७.२	२८.६
		(६२.६)	(२६.६)	(१०.३)		(६६ ७)	(३.३)					
४००१ से ५०००	४३३५	२६३४	११०८	२६३	४०८१	२७६५	१२८६					
		(६७.६)	(२५.६)	(६.७)		(६८.५)	(३१.५)					
५००१ से ऊपर	८२२३	६८२२	८७०	५३१	७८६२	५२७०	२५७२					
		(८३.०)	(१०.६)	(६.४)		(६७.२)	(३२.८)					
समस्त आय वर्ग	२५२२६	१६४८	६३१	२५०	२४६६	२४८७	६७८	४३४	१३.०	४५.५	११.२	३०.३
		(६५.१)	(२४.६)	(१०.०)		७१.८	२८.२					

झाबुआ जिले का प्रति परिवार आय-व्यय व ऋण ग्रस्तता सर्वेक्षण १९७३-७४[1]

आय के अनुसार परिवार समूह	लिये गये परिवार	औसत वार्षिक पारिवारिक आय	परिवार की औसत आवक	प्रति व्यक्ति आय	प्रति व्यक्ति व्यय	प्रति व्यक्ति गणनानुसार ५-६	ऋणग्रस्तता भौतिक ग्रस्तता
१	२	३	४	५	६	७	८
१००० से कम	३५	८१०	६.१	१३२.८	४००.४	३६७.८	१३९.५
१००१ से १५००	४७	११९५	६.७	१७८.४	३५८.६	१८०.२	८६.६
१५०१ से २०००	५५	१७४४	७.३	२३८.९	३७६.५	१३७.६	८३.०
२००१ से २५००	५८	२२५२	८.५	२६६.६	३८९.८	१२४.६	६३.५
२५०१ से ३०००	४४	२७००	८.६	३१४.०	४०९.५	९५.५	५८.१
३००१ से ३५००	३६	३२२६	१०.४०	३१०.५	३९३.६	८३.१	४६.२
३५०१ से ४०००	१७	३७६८	१०.०	३७६.६	४४६.९	७०.१	४७.१
४००१ से ५०००	८	४३३५	१२.१	३५८.२	३३६.६	—	—
५००० से ऊपर	२०	८२२३	१२.८	६४२.४	६१२.७	—	—
समस्त आय समूह	३२०	२५२६	८.४	३००.२	४११.२	१११.०	५१.५

नोट—कुछ परिवारों ने आय से व्यय को अधिक बताया।

स्रोत—इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपीनियन द्वारा किया गया सर्वेक्षण, १९७४।

१. झाबुआ जिले का आदिवासी जन-जीवन : एक अध्ययन (वार्षिक निबंध) १९७३-७४। (जिला सांख्यिकी कार्यालय झाबुआ)

अशिक्षा भी आदिवासियों के लिए अभिशाप बनी हुई है। झाबुआ जिले मे शिक्षा का प्रतिशत १९८१ की जनगणना मे भी सबसे कम है। इसका प्रमुख कारण है आर्थिक पिछड़ापन तथा अज्ञानता। आदिवासी अपने बच्चो को विद्यालय भेजने में आज भी कतराते है। भीलो के लड़के-लडकियां जंगल में ढोर चराने, लकडी बीनने तथा पिता-माता के साथ काम करने में ही समय व्यतीत कर देते है। शिक्षा ग्रहण करते हुए भी वे घर सभाल सकते है तथा अपने पिता-माता के सहयोगी हो सकते है। पर आवश्यकता है उन्हे वास्तविकता से अवगत कराने की।

झाबुआ, म०प्र० में शिक्षा के क्षेत्र में इतना पिछड़ा हुआ क्यों है ? यह एक गंभीर समस्या है। भीलों का विश्वास सुदूर ग्रामीण अचलो में यह भी है कि लड़का पढने से बिगड़ जाता है। इस भ्रम को दूर करना अति आवश्यक है। अन्य अंध-विश्वासों और रुढ़ियों के कारण भी ये स्कूल में वंचित रह जाते है।

मैं इन भीलों में शिक्षक का काम करता रहा हू ! इस शैक्षणिक प्रगति के लिए क्या-क्या आवश्यक है, अनेक प्रश्न व समाधान है किंतु आवश्यकता इस पर अमल की है। यह मेरा अनुभवात्मक विश्वास है कि यदि इन आदिवासियों की शैक्षणिक प्रगति पर ध्यान दिया जाए तो ये काफी प्रगति कर सकते है। शैक्षणिक विकास को प्राथमिकता अपेक्षित है।

मध्य प्रदेश की तुलना में इस आदिवासी जिले का शैक्षणिक स्तर विचारणीय है, जो इस तालिका मे परखा जा सकता है, यथा—

झाबुआ एवं म० प्र० का तुलनात्मक विवरण
विद्यालय जाने वाला बालक

	६ से ११ वर्ष		१२ से १३ वर्ष		१४ से १६ वर्ष	
वर्ष	झाबुआ	म० प्र०	झाबुआ	म० प्र०	झाबुआ	म० प्र०
१९६०-६१	२७.१८	५४.१०	२९.१०	४३.५४	२१.६१	२०.९८
१९६२-६३	३६.४७	५४.२०	२५.०४	४३.०८	७.५८	२४.८३
१९६४-६५	३३.७६	६०.६१	१९.२७	४३.९८	९.२९	२७.४५
१९६५-६६	३६.४२	६०.१७	१९.५४	४४.७१	९.७३	२९.६९
१९६६-६७	३७.६२	५९.०६	२०.८३	४५.३९	९.२४	२९.६२
१९६७-६८	३५.३०	५८.२९	२१.५३	४६.९८	१०.०५	२८.७०
१९६८-६९	३१.८५	५८.०७	२०.०८	४५.००	११.००	२८.७५
१९६९-७०	३६.०९	६०.१८	२०.४५	४१.०७	११.२७	३०.६२
१९७०-७१	३०.३२	५५.५८	२०.७९	४०.२४	११.१०	२७.२९

विद्यालय जाने वाली बालिकाओं का प्रतिशत

१९६०-६१	४.७०	१७.५४	८.२०	११.३३	३.७७	४.०५
१९६२-६३	८.९६	१९.५९	६.८५	१३.३१	०.६४	४.८५
१९६३-६४	९.२५	२३.३०	६.२६	१४.५१	१.५४	६.४३
१९६५-६६	९.९४	२४.२४	६ १३	१५.३१	२.५४	७.००
१९६६-६७	११.२१	२५.०१	७.१५	१६.५१	३.६४	६.६३
१९६७-६८	११.५०	२५.३५	'७.५६	१७.४४	२.९६	७.२९
१९६९-७०	१२.१९	२७.०४	७.२५	१६.३०	३.४४	८.८६
१९७०-७१	१०.००	२५.००	७.३०	१६.३७	३.७४	८.४४

मध्य प्रदेश का बस्तर जिला भी शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है, किंतु झाबुआ का प्रतिशत उससे भी कम है १९८१ की जनगणना में भी झाबुआ साक्षरता में सबसे कम है। भारतीय स्तर पर इसे परखें तो ज्ञात होगा—

स्रोत—म० प्र० के आर्थिक सूचकांक।
'झाबुआ जिले में शिक्षा का स्तर' वार्षिक निबन्ध।

विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत

साक्षरता का प्रतिशत १९७१	६-११	१२-१३	१४-१६
सम्पूर्ण भारत—२९.४६	७७.००	३२.००	१९ ००
मध्य प्रदेश—२२.१४	४३.७५	२९.००	१०.८५
इन्दौर जिला—४३.४९	—	५१.६१	१४.१९
वस्तर जिला— ९.६३	२५.८०	१६.७२	९.८२
झाबुआ जिला— ८.२३	२२.९३	१४.८८	७.५८

साक्षरता का प्रतिशत

	पुरुष १९६१-७१		स्त्री १९६१-७१	
झाबुआ	९.०६	११.७५	२.९०	४.५९
मध्य प्रदेश	२७.०३	३२.७०	६.७२	१०.८२
भारतवर्ष	३४.४४	३९.४५	१२.९५	१८.७२

छात्राओं का प्रतिशत

वर्ष	६-१०		११-१३		१४-१६	
	झाबुआ	म० प्र०	झाबुआ	म० प्र०	झाबुआ	म० प्र०
१९७०-७१	१०.०	२५.००	७.३०	१६.३७	३.७४	—

साक्षरता प्रतिशत

	ग्रामीण १९६१-७१		शहरी १९६१-७१	
झाबुआ	३.५	५.०९	४०.८	४८.०४
मध्य प्रदेश	१२.७	१६.८१	४३.५	४९.५५
भारत	१९.०	२३.७४	४६.९७	५२.४९

झाबुआ जिले की तहसीलवार संख्या

तहसील	१००० पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या		Sch cast आदिम जाति प्रतिशत		Sch. Tribes अनु० जन-जाति प्रतिशत	
	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१
आलीराजपुर	९५५	९६८	५.९	५.४	८४.१	८५.२
झाबुआ	९६४	९७८	१.३	१.४	८७.६	८६.८
जोबट	९४४	९६४	२.२	२.१	९१.३	९०.५
पेटलावद	९५७	९५९	२.६	२.६	७०.०	७०.५
थादला	९६७	९७२	१.८	१.६	८५.०	८५.५
जिला योग	९५८	९५९	२.८	२.७	८४.७	८४.७

साक्षरता प्रतिशत झाबुआ जिले का

	पुरुष		स्त्री		योग'	
	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१
आली राजपुर	७.२३	८.४४	२.९९	३.६५	५.१५	६.०८
झाबुआ	८.८६	१२.६१	२.९४	५.११	५.१९	८.९०
जोबट	५.८४	८.३०	१.८६	२.९०	४.००	५.९०
पेटलावद	११.६६	१८.४०	३.७१	६.२०	९.३०	१२.४०
थांदला	११.२०	१३.९०	३.२३	६.२०	७.२८	९.६०

ग्रामीण साक्षरता प्रतिशत

	पुरुष		स्त्री		योग	
	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१
आली राजपुर	३.८	४.२३	०.८६	१.२६	२.००	२.७६
झाबुआ	४.५१	६.३१	०.९३	१.४६	२.७४	४.११
जोबट	३.७६	५.७४	०.८५	२.१५	२.३४	३.९७
पेटलावद	११.८०	१५.४२	२.३४	४.४२	७.१४	१०.०३
थादला	८.५२	१०.८०	१.७३	२.९३	५.१७	६.९१
जिला योग	५.२३	७.७९	३.११	१.२६	३.८०	५.०९

झाबुआ जिले की जनसंख्या का प्रतिशत

	जन संख्या प्रति किलोमीटर		ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत कुल जनसंख्या से		१००० पुरुषों पर स्त्रियां		कुल जनसंख्या का Sch. cast		कुल जनसंख्या का Sch. Tribes	
	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१
१. आलीराजपुर	४८	५५	९४.११	९४.१०	९५५	९६६	५.९	५.४	८४.१	८५.२
२. झाबुआ	९०	११६	९१.०१	८६.८१	९६४	९७८	१.३	१.४	८७.६	८६.८
३. जोबट	८८	१०२	९६.१०	९५.७४	९४४	९६४	५.२	२.१	९१.३	९०.५
४. [illegible]	६६	९१	९२.७०	९२.५९	९५७	९५९	२.६	२.५	७०.०	७०.५
५. [illegible]	[illegible]	६८	९४.११	९४.२७	९६७	९७२	१.८	१.६	८५.०	८५.५
[illegible]	[illegible]	७८	९१.०६	९२.६६	९५८	९६६	५.८	५.७	८४.७	८४.७

झाबुआ जिले की जनसंख्या का कार्यानुसार वर्गीकरण

क्रमाक	कार्यानुसार वर्गीकरण	कुल जनसंख्या जो कार्य में सलग्न है	पुरुष	स्त्री	ग्रामीण	नगरीय
१.	कृषक कार्यशील	१५९५००	१४६९९२	१२५०८	१५७७०९	१७९१
२.	खेतीहर मजदूर	१६८७४	१०२३७	६६३७	१५९२७	९४७
३.	पशुधन, वन, मछली पकड़ना, शिकार आदि	१७३५	१३७४	३६१	१५१४	२२१
४.	खनिकर्म एव पत्थर तोड़ना	२१	२१	—	१६	५
५.	गृह उद्योग	३६४४	३०३४	६१०	२३०६	१३३८
६.	अन्य उद्योग	११५८	१०७२	८६	४२५	७३३
७.	निर्माण कार्य	४५०	४२५	२५	२१९	२३१
८.	व्यापार व वाणिज्य	४५५३	४४३३	१२०	२१९५	२३५८
९.	यातायात, संचार आदि	११८६	११७८	८	७५६	४३०
१०.	अन्य सेवाएं	८७७०	७४७६	१२९४	३८२१	४९४९
	योग कार्यशील	१९७८९१	१७६२४२	२१६४९	१८४८८९	१३००२
	योग अकार्यशील	४६९९२०	१६२९८४	३०६९३६	४३४०९९	३५८२१
	महायोग	६६७८११	३३९२२६	३२८५८५	६१८९८८	४८८२३

प्रति व्यक्ति वार्षिक आय व व्यय का स्तर

आय के अनुसार परिवार समूह	औसत परिवार का आकार	प्रतिव्यक्ति वार्षिक आय	योग	प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक व्यय			
				भोजन	प्रतिशत	अन्य	प्रतिशत
१	२	३	४	५	६	७	८
१००० से कम	६.१	१३२.८	४००.४	३०९.६	७७.३	९०.८	२२.७
१००१ से १५००	६.७	१७८.४	५५८.६	२७२.२	७५.९	८६.४	२४.१
१५०१ से २०००	७.३	२३८.९	३७६.५	२८०.४	७४.५	९६.१	२५.५
२००१ से २५००	८.५	२६४.९	३८९.८	२७८.८	७१.५	१११.०	२८.५
२५०१ से ३०००	८.६	३१४.०	४०९.५	२९०.६	७१.०	११८.९	२९.८
३००१ से ३५००	१०.४	३१०.५	३९३.६	२७२.२	७०.४	११६.४	२९.६
३५०१ से ४०००	१०.८	३७६.८	४४६.९	३११.५	६९.७	१३५.४	३०.४
४००१ से ५०००	१२.१	३५८.२	३३६.६	२३०.६	६८.५	१०६.०	३१.५
५००० से ऊपर	१२.८	६४२.४	६१२.७	४११.७	६७.२	२०१.०	३२.८
समस्त आय समूह	८.४	३००.२	४११.२	२९५.१	७१.८	११६.१	२८.२

स्रोत—इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपिनियन द्वारा किया गया सर्वेक्षण, १९७४।

झाबुआ जिले की जनसंख्या का कार्यानुसार वर्गीकरण

क्रमांक	कार्यानुसार वर्गीकरण	कुल जनसंख्या जो कार्य में संलग्न है	पुरुष	स्त्री	ग्रामीण	नगरीय
१.	कृषक कार्यशील	१५९५००	१४६९९२	१२५०८	१५७७०९	१७९१
२.	खेतीहर मजदूर	१६८७४	१०२३७	६६३७	१५९२७	९४७
३.	पशुधन, वन, मछली पकड़ना, शिकार आदि	१७३५	१३७४	३६१	१५१४	२२१
४.	खनिकर्म एवं पत्थर तोड़ना	२१	२१	—	१६	५
५.	गृह उद्योग	३६४४	३०३४	६१०	२३०६	१३३८
६.	अन्य उद्योग	११५८	१०७२	८६	४२५	७३३
७.	निर्माण कार्य	४५०	४२५	२५	२१९	२३१
८.	व्यापार व वाणिज्य	४५५३	४४३३	१२०	२१९५	२३५८
९.	यातायात, संचार आदि	११८६	११७८	८	७५६	४३०
१०.	अन्य सेवाएं	८७७०	७४७६	१२९४	३८२१	४९४९
	योग कार्यशील	१९७८९१	१७६२४२	२१६४९	१८४८८९	१३००२
	योग अकार्यशील	४६९९२०	१६२९८४	३०६९३६	४३४०९९	३५८२१
	महायोग	६६७८११	३३९२२६	३२८५८५	६१८९८८	४८८२३

आधुनिक उत्कर्ष में आदिवासी-उत्थान

आदिवासियों के बहुमुखी विकास हेतु शासन कृतसंकल्प है। ८५ प्रतिशत आदिवासियों वाले झाबुआ जिले में शासन द्वारा नव-जागरण का शंखनाद पूरे क्षेत्र का कायाकल्प करने में सक्षम सिद्ध हो रहा है। भीलों से भरा-पूरा झाबुआ जिला, पंचवर्षीय योजनाओं से सतत प्रगति की ओर अग्रसर है।

आदिवासियों के उत्थान की दृष्टि से इस जिले को दो भागों में विभक्त कर प्रोजेक्ट बनाए गये हैं—झाबुआ प्रोजेक्ट और आलीराजपुर प्रोजेक्ट। आलीराजपुर एशिया स्तर पर अपराध में अग्रगण्य है, अतः वहा भीलों के बहुमुखी विकास हेतु अनेक योजनाएं कार्यान्वित की गई है।

भील शोषण के शिकार है, अतः निर्धनता से निकालकर उन्हें सम्पन्नता की ओर उन्मुख करने का सक्रिय प्रयास किया जा रहा है। भील कर्ज के बोझ से इतने अधिक दबे रहते हैं कि उनका उभरना कठिन हो जाता है। व्यापारी वर्ग उनका भयंकर शोषण करता है। अधिकतर भील अपनी थोड़ी-बहुत जो भी सम्पत्ति (कथीर व चांदी के गहने, खेत, पेड़ आदि) होती है, गिरवी रखने को मजबूर हो जाते है, और इस मजबूरी का नाजायज फायदा व्यापारी व साहूकार आदि उठते हैं।

शासन द्वारा भीलों को इस बुराई से बचाने के लिए तीव्र अभि-यान चलाया जाता है। 'ऋणमुक्ति' अभियान के अन्तर्गत झाबुआ के गांव-गांव में तत्कालीन पुलिस अधीक्षक डॉ० शकील रजा द्वारा गिरवी रखी भीलों की चीजें साहूकारो से वापिस दिलाई गईं। भीलों को ऋणग्रस्तता से मुक्त कराने के लिए शासन की ओर से अधिकारी स्वयं बीहड़ वनों, ग्रामीण अचलों तथा फलियो पर जाकर कार्यक्रम आयोजित करते रहे है। इस आयोजन में व्यापारी भी स्वेच्छा से

सहयोग देने को तत्पर हो जाते हैं।

कर्ज तो वैसे भी समाज के लिए अभिशाप है किंतु अशिक्षा और अज्ञानान्धकार में भटके भीलों के लिए तो यह कोढ़ की खाज बन गया है। भील अपने बर्तन-भाड़े, मुर्गी-मुर्गे, गाय-बैल, बकरी-बकरे, जमीन व पेड़ भी गिरवी रखकर कर्ज में पीढ़ी दर पीढ़ी डूबे रहते है। उस कर्ज की पूर्ति हेतु वे साहूकारों के घर नौकर बनकर जीवन गुजार देते हैं, पर कर्ज से नही उबरते।

इस अभियान के फलस्वरूप अपनी अमूल्य वस्तुओं को प्राप्त कर भील भीलांगनायें फूले नहीं समाते। जागृति का ज्वार इस प्रकार उमड़ा है कि सारा ग्राम्यांचल उसमें सराबोर हो उपलब्धियों के आह्लाद से पुलक उठा। सामाजिक कार्यकर्ता भी ऋण-निवारण कार्यक्रम में भाग ले रहे है।

झाबुआ जिला विकास कार्यक्रम के अंतर्गत झाबुआ प्रोजेक्ट में तीन तहसीलें सम्मिलित की गई हैं—

नाम	भौगोलिक क्षेत्र (हेक्टर)	जंगली क्षेत्र है	सिंचाई क्षेत्र है
झाबुआ	१४१२१८	१३६३६	१६७५
थांदला	१०४५३४	१६५१३	१४३०
पेटलावद	६५६४१	१६०१	४५६६

कंकरीले व पथरीले इस पहाड़ी इलाके में हरित क्रान्ति का तीव्र अभियान भी चलाया जा रहा है। माही[1] योजना करोड़ों के व्यय से धार व झाबुआ जिलों को शस्यश्यामल बनाने पर मानो तुली हुई है। इस वृहत् योजना से पर्याप्त सिंचाई संभव हो सकेगी। इसके अतिरिक्त १६ और योजनाएं भी क्रियान्वित हो रही है।

झाबुआ प्रोजेक्ट के अंतर्गत ५८३ फलियां[2] विकास से लाभान्वित

१. बड़ी नदी का नाम।

२. भील पहाड़ियों पर बिखरी बस्ती में रहते है। समन्वित गाव मे रहना उन्हें पसन्द नही है फिर भी कुछ घरों को मिलाकर फलिया (गाव) का रूप दिया जाता है।

होंगी जिनमें लगभग २०० से ३०० के बीच लोग रहते हैं। इनके लिए पानी की सुविधा हेतु हैंडपम्प, कुआं आदि खोदने की विशेष योजनाएं हैं। तालाब पर्याप्त मात्रा में बनाये जा रहे हैं। नालों को बांधकर पानी एकत्र करने की भी समुचित व्यवस्था की जा रही है।

शिक्षा—झाबुआ जिले का शैक्षणिक स्तर चिन्तनीय है। १९८१ की जनगणना में भी यहां का प्रतिशत सारे मध्य प्रदेश में सबसे कम है। अतः शिक्षा की समुचित व्यवस्था हेतु प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पर्याप्त मात्रा में खोले जा रहे हैं। छात्रावासों का भी विस्तार बड़ी तेज गति से किया जा रहा है, जिससे ग्रामीण आदिवासी—हरिजन छात्र-छात्राओं को सभी सुविधाएं वहां छात्रावासों में उपलब्ध हो सकें।

छात्र-छात्राओं के सर्वांगीण विकास के लिए आवास, भोजन, गणवेश व पुस्तकों की व्यवस्था के अतिरिक्त सांस्कृतिक व साहित्यिक दृष्टि से भी उन्हें कुशल बनाने का प्रयास रहता है। आदिवासी छात्र-छात्राएं सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए दर्शकों को प्रभावित करते है।

कृषि—किसानों की समस्याओं के समाधान हेतु सरकार अनेक प्रभावकारी कार्य कर रही है। भील अधिकतर कृषक व मजदूर ही है। अतः कृषि कार्य को प्राथमिकता दी जा रही है। इस जिले की ऊबड़-खाबड़ भूमि को समतल बनाने का कार्य तेजी से चलाया जा रहा है। भूमि संरक्षण विभाग इस ओर काफी क्रियाशील है।

कृषकों को बैलों के लिए ऋण प्रदान किये जाते हैं। बड़े किसानों को ट्रेक्टर भी दिया जाता है। उन्नत बीज, अच्छे औजार, उर्वरक, कीटनाशक दवाएं, कृषि-कर्म-प्रशिक्षण आदि का प्रबन्ध किया जा रहा है।

कृषि कर्म के साथ ही पशुपालन, मत्स्यपालन, मुर्गी पालन के लिए भी ग्रामीणों को पर्याप्त सुविधाएं प्रदान की जा रही है। झाबुआ में कड़कनाथ नस्ल के मुर्गे विशेष प्रसिद्ध है। अतः इनके पालन व संवर्धन पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है। पशुओं के नस्ल सुधार

हेतु सांड भी उपलब्ध कराया जाता है। दुधारू पशुओं की वृद्धि, भेड़-बकरियों के पालन, आदि का कार्य तेजी से किया जा रहा है।

वन —जंगल जीवन-यापन का प्रमुख स्रोत है। वनोपज पर ही आदिवासियों का भविष्य निर्भर रहता है। लकड़ी काटकर आस-पास के बाजारों में बेचना और इसी पर पेट पालना इनका प्रमुख कार्य है, यही कारण है कि दिनोंदिन जंगल उजड़ते चले जा रहे है।

झाबुआ जिले में घास की पैदावार आवश्यकता से अधिक होती है, अतः किसानों को घासों के विक्रय से पर्याप्त आय होती है। महुआ, डोली भी झाबुआ के आदिवासियों के लिए अमूल्य थाती है, क्योंकि महुआ से ही शराब बनाकर ये पीते हैं, तथा शराब इनका प्रमुख पेय है, डोली (महुए का फल) से तेल निकालकर ये अपने उपयोग में लाते हैं। टेमरु, तेंदूपत्ता, रोशा उद्योग इस जिले के वनों की विशेष देन है। शहद व चिरौंजी भी उपलब्ध होती है। काजू के पौधे भी लगाये जाते हैं। वन-सम्पदा की समृद्धि को जितना सराहा जाए थोड़ा है।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भीलों की भूमिका

अपनी संवेदनशील प्रवृत्ति के कारण भील जन-जागृति के आह्वान पर अपना सर्वस्व अर्पित करने को तत्पर हो जाते है। उनकी चेतना जरा-जरा-से स्पर्श पर सक्रिय हो जाती है। मुगल-काल में औरंगजेब के समय भी यह जनजाति किसी प्रकार का दवाव सहन करने में तिलमिला उठी थी।

१८१७ का भील-आन्दोलन अंग्रेजों की चाल का परिणाम था। वैसे तो भील समय-समय पर राजपूतों से भी टकराते रहे, किन्तु इसी अवधि में 'भील बनाम अंग्रेज' आन्दोलन काफी उग्र रहा। भील अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध थे। अंग्रेज शोषक बनकर आदिवासियों को चूस रहे थे तथा विविध माध्यमों से उन पर अत्याचार करते थे। इन्हीं कारणों से संभवतः भील बीहड़ वनों में और सिमटते गये। कुछ विदेशी विद्वानों का भी यही तर्क है, जिनमें प्रमुख है आइरिना सेमास्को। उन्होने जोर देकर कहा है कि "अंग्रेजों के आगमन के समय से ही भीलों के उत्पीड़न का काल शुरू हुआ। उपनिवेशवादियों ने छोटी-छोटी जातियों के लोगों के रहन-सहन की स्थितियों मे सुधार करने के बजाय उनके निवास के इलाकों में 'कानून और व्यवस्था' की स्थापना में ही अपनी सारी ताकत लगा दी। ब्रिटिश शासन द्वारा लागू की गई गलाघोंटू कर-प्रणाली का भीलों को खासतौर से शिकार होना पड़ा। इस उत्पीड़न को सहन न कर पाने के कारण भीलों ने बार-बार विद्रोह किया।"[1]

भीलों के इस आन्दोलन में अंग्रेजी सत्ता का कड़ा विरोध किया गया, जिसे 'खानदेश विद्रोह' के नाम से जाना जाता है। राजस्थान से उभरा हुआ यह आन्दोलन १८२५ ई० तक सतारा और १९३१ ई०

---

१. आइरिना सेमास्को, नई दुनिया, ३ अक्टूबर, १९७५।

तक मालवा में फैल गया। अंग्रेजी सत्ता भीलों पर दमनचक्र चलाती रही, किंतु अपनी साहसी प्रवृत्ति के कारण ये पीछे नहीं हटे। अंततः राजपूतों की मदद से अंग्रेज १६४६ ई० तक इनपर काबू पा सके।

भील इस तथ्य को भली प्रकार भांप गये कि हमारी आंतरिक कमजोरी के कारण ही अंग्रेज हमपर हावी होते जा रहे है; अतः अपने सामाजिक संगठन की सुदृढ़ता के लिए उन्होंने धार्मिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों का सहारा लिया। 'महीकांठा' और डूंगरपुर में लसोड़िया भील द्वारा चलाया गया आन्दोलन बासवाड़ा (राजस्थान) तथा पंचमहाल (गुजरात) क्षेत्र में और पश्चिमी मध्य प्रदेश में काफी प्रभावशाली रहा।

'गोविंदगिरि' का जागरण-आह्वान भीलों में नयी चेतना के साथ राजस्थान, गुजरात व मध्य प्रदेश क्षेत्र मे शीघ्र ही प्रभावी हो गया। अपनी उत्तेजना के आक्रोश में उसने सतरामपुर के राजा पर आक्रमण कर दिया, किंतु अंग्रेजों के हस्तक्षेप से उसे पराजित होना पड़ा। यही नहीं, वरन् अपनी बढ़ती हुई लोकप्रियता और आन्दोलन की उग्रता के आक्रोश में उसने १८१२ ई० में 'भीलराज' की स्थापना की घोषणा कर दी, जिससे वातावरण और तनावपूर्ण हो गया। अंग्रेज इस आंदोलन से भयभीत अवश्य हुए, पर उनके पास शक्ति थी, अतः निर्ममता पूर्वक इस आंदोलन को कुचल दिया गया, जिसका अन्त गोविंदगिरि की गिरफ्तारी से हुआ।

वनवासी भील अपने सामाजिक जीवन मे किसी भी प्रकार की बाहरी घुसपैठ को सहन नहीं करते। जब भी कोई हितैषी बनकर इनमें प्रवेश पाता है और विश्वास पैदा कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने लगता है, तभी ये सजग हो उसका कड़ा विरोध करते है। इनके भोले-भाले स्वभाव का नाजायज लाभ उठाने वाले बाहरी लोग अपने जाल मे इन्हें फंसाने का जैसे ही प्रयास करते है, वैसे ही ये सतर्क हो जाते है। भील आदोलनों की जड़ में यही भावना सदैव उभरती रही है।

राष्ट्रीय चेतना से भील सदैव ही तत्पर रहे है, और आज भी हैं।

भीलों की राष्ट्रभक्ति हल्दीघाटी के मैदान में ही उजागर हो, मुगल-सेना को तबाह कर प्रमाणित हो चुकी है। ये महाराणा प्रताप के प्रमुख सहयोगी रहे। मुगल सल्तनत, और राणाओं की टक्कर में भीलों ने जिस ओजस्वी पौरुष का परिचय दिया, वह भारतीय इतिहास में अनूठा है। भीलों की पौरुष पराकाष्ठा, युद्ध-कौशल, साहस, बल-विवेक आदि को परखकर, राजपूत इतने अभिभूत थे कि उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के समान ही सम्मान देते थे।[1] उदयपुर शहर की सुरक्षा में भीलों का अद्‌भुत साहस सराहनीय रहा। कर्नल टाड ने इसका विस्तृत वर्णन किया है—

"१८५७ के स्वाधीनता समर में टांटिया भील के नेतृत्व में भीलों की साहसी टुकडी ने राजस्थान के बांसवाड़ा क्षेत्र में जिस कौशल का प्रदर्शन किया, उससे महाराजा श्री लक्ष्मण सिंह बेहद प्रभावित हुए। एकलिंगजी की पूजा में भी राजपूत हमेशा भीलों को साथ रखते तथा विशेष कार्यक्रमों में उन्हें सम्मिलित करते थे।

भीलों को कभी-कभी इसके प्रतिकूल परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता था, अर्थात् कठोर-से-कठोर दंड भी उन्हें दिये जाते थे। कभी-कभी तो फांसी के फंदे में लटकाने की क्रूरता के भी उदाहरण मिलते है। हाथ-पैर काटकर निष्ठुरतापूर्वक सताने के भी उदाहरण हैं।[2]

मराठों से भीलों के संपर्क कभी-कभी कड़वे होते रहे। यही नहीं वरन् मराठे भीलों को कभी-कभी बहुत सताते भी थे। थोड़ी-थोड़ी गलतियों पर इन्हें कठोर-से-कठोर दंड दिया जाता था। ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि उन्हें आग में जीवित ही झोंक दिया जाता था।[3]

वांसवाड़ा क्षेत्र (राजस्थान) में भीलों की राजपूतों से अनबन कभी-कभी खतरनाक मोड़ पर आ जाती। राजपूत राजा जगमाल से लेकर पृथ्वीसिंह तक अनेक राजाओं से प्रायः भीलों की झड़प होती

---

१. Col. Tod.
२. Morris.
३. History of the Marathas. Vol. I, by Duff.

रहती। राजस्थान के भील इसी उन्माद में कभी-कभी सरहद की स्टेटों पर भी हमला कर देते थे। १८७२-७३ के आसपास दौला भील इतना सक्रिय हो गया कि उसने अपने नेतृत्व में बड़ा सुदृढ़ संगठन बनाकर स्टेट को कर देने से इन्कार कर दिया। अंततः कुछ विशिष्ट लोगों के हस्तक्षेप से सुलह करायी गई।[१]

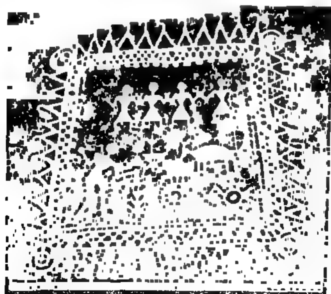
इसी प्रकार टांटिया भील की भी अभूतपूर्व भूमिका राष्ट्रीय आंदोलनों जुड़ी हुई है। भीलों ने राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पित भावना से सदैव कार्य किया है, और आज भी वे राष्ट्रीय उत्थान में पूर्ण योगदान कर रहे हैं। शोषण व अभावों में पलते हुए भी ये भील आदिवासी असीम श्रमशील व देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत है।

---

१. Vakaye Rajputana, Vol. I, page 527.

भीली लोककथा

आदिवासी अपनी आन्तरिक अनुभूति की अभिव्यक्ति विविध माध्यमों से करते हुए आत्मविभोर हो जाते हैं, जिसमें प्रमुख हैं उनके लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं आदि। उनकी लोककला-भावना की तृप्ति भी तब तक नहीं होती, जब तक वह उफन नहीं पड़ती। भीलों की लोककला का लालित्य उनके मिट्टी के खिलौनों पर बनी बारीकियों से मिलता है, जब एक घोड़े को मूर्तिमान करने में वे अनोखी कुशलता बरतते हैं। उस पर उकेरी गई कला का माहात्म्य आलीराजपुर क्षेत्र के बने मिट्टी के बर्तनों-खिलौनों पर देखते ही बनता है। इसी प्रकार कुत्ते, शेर आदि जंगली जानवरों की आकृति भी वे बड़ी



बारीकी के साथ बनाते हैं।

पशु-पक्षियों के चित्र उकेरने में भी ये बड़े पटुहोते है। अपनी झोंपड़ियों की लिपी-पुती मिट्टी की दीवारों पर ये अनेक आकृतियां

बनाते हैं। मोर का चित्र, सांप का चित्र; तथा अन्य सांस्कृतिक आकृतियां ये आदिवासी बड़ी रुचि के साथ बन

भीलों का प्रमुख अस्त्र है तीर-धनुप। इसको संवारने में ये बेहद रुचि लेते हैं। आखेट की अनेक आकृतियां पत्थरों पर उकेरी हुई मिलती हैं, जिनमें शर-संधान के नयनाभिराम चित्र शैलाश्रयों व अन्य स्थानों पर पाये गये है। आदिवासियों के प्रकृति-प्रेम की प्रगाढ़ता के भी अनेक चित्र देखने को मिलते है। प्रेम की पराकाष्टा के अनेक प्रतीक प्रेयसी को गुदगुदाने वाले होते हैं। भील बांसुरी-वादन में बेहद रुचि लेते है। उनकी बांसुरी बनाने की कला भी अपने में अनूठी और अनुकरणीय है। बड़ी साज-संभार के साथ भील युवक बांसुरी बनाकर उसकी मादक ध्वनि से प्रेमिका को रिझाता है। वसंत की अगवानी और भगोरिया की उमंग में तो बांसुरी की टेर सुनते ही बनती है। भीलों के दैनंदिन जीवन में इस वाद्य का, और इसे बनाने की कला का अत्यधिक महत्त्व है।

'गाता' में भील अपने सगे-सम्बन्धियों और विशेप व्यक्तियो की स्मृति संजोते है, जो उनकी महत्ता की परिचायक होती है। इसे स्मारक भी कहना उचित होगा। संपन्न लोग जहा विशालकाय, धन-दौलत से भरपूर समाधि-स्थल या स्मारक का निर्माण कर अपनी समृद्धि को उजागर करते है, वहीं ये गरीब आदिवासी अपने पूर्वजो के प्रति आस्था का उफान उंड़ेल, ईट-मिट्टी की ही समाधि बनाते है, जिस पर उकेरी गई आकृति उस व्यक्ति की विशेपताओं की परिचायक होती है, तथा आदिवासियो की धार्मिक, सांस्कृतिक, तांत्रिक आदि भावनाओं का छलकाव भी उसमें खूब रहता है। भील 'गाता' में अपने अतीत के गौरव को भी साकार करने का प्रयास करते हैं।

काठ के खिलौने बनाने में भी ये भील बड़े पारंगत होते है। प्रायः यौवन की आकृतियां उकेरने में ये विशेप रुचि लेते हैं। सिर पर घड़ा रखकर पानी भरने वाली युवती की आकृति बड़ी मनोहारी लगती है। मिट्टी, पत्थर तथा लकड़ी पर उकेरे गये चित्र बड़े रोचक होते है। स्त्रियां अपनी झोंपड़ियों के दरवाजे के दोनों ओर (बाहरी ओर) मिट्टी की उभरी हुई आकृति बनाना भी पसंद करती हैं। इसे वे

रंग-विरंगा करने में भी रुचि लेती हैं। अपने इष्ट देवताओं की आकृतियां भी ये उकेरती है।

वांस व लकड़ी के काम में तो इनकी जितनी भी सराहना की जाए, थोड़ी है! कुछ सम्पन्न आदिवासी मिट्टी के घर वनाते हैं, जिसकी चौखट व दरवाजों पर नक्काशी भी ये बड़ी वारीकी से करते हैं। यद्यपि गाव का सुतार या वढ़ई भी इस कार्य को करता है, किंतु आदिवासी की कला कुछ और ही होती है। कृषि-कर्म में प्रयुक्त होने वाले हल का निर्माण भी ये वड़ी सजगता के साथ करते है। एक प्रकार का हल तो वह होता है, जो नुकीला होकर जमीन को गहराई तक खोदता है; जबकि दूसरा हल लोहे की चौड़ी आकृति का, जमीन की सतह पर चलता है। हल की मूठ तथा अनाज बोने वाली वास की नली की कला भी देखते ही वनती है।

भील प्रायः लौकी की तूमड़ी से पानी निकालते व पीते है। घर में मिट्टी का घड़ा और उसके समीप रखी लौकी की तूमड़ी उनकी कला की परिचायक होती है। इसी प्रकार अपने दैनिक जीवन के उपयोग की अन्य आवश्यक सामग्री भी ये आदिवासी बड़ी लगन के साथ तैयार करते हैं।

अपने आयुधों को सजाने-संवारने में भी ये अत्यधिक पारंगत है। तीर के फाल को अनेक आकार देना इनकी विशेपता है। निशाना साधने के दृष्टिकोण से ही ये फाल बनाते या वनवाते हैं, अथवा साप्ताहिक हाट में क्रय करते है। तीर के पिछले हिस्से को पंखों व अन्य सामग्रियों से खूब संवारते हैं। इसी प्रकार धनुप भी बांस का वनाते है, जो अपनी क्षमता के अनुसार खींचकर निशाना साधने लायक होता है।[1] इसी प्रकार फालिया की मूठ भी ये बड़ी कलाकारी के साथ वनाते हैं। अन्य अस्त्र-शस्त्रों की साज-सज्जा में भी इनकी रुचि होती है। यद्यपि यह कार्य लुहार व सुतार करते है, किन्तु भीली गांवों में ये जातियां भी उनसे सम्वद्ध रहकर कलात्मक कार्य करती है।

---

१. Bowmen of Mid India, Vol. I, Koppers & Jungblut, Page. 76-78.

भीली क्षेत्रों में मिट्टी के खिलौने बनाने की विशेष प्रथा है। भील प्राय: जादू-टोने या अन्य तत्संबंधी कार्यों मे मिट्टी से बनाये हुए घोड़े, मोर, दीया अथवा अन्य प्रकार की सामग्री का प्रयोग करते



आलीराजपुर के लोक-शिल्पी द्वारा बनायी गयी घोड़े की मूर्ति
जिसकी भीलों में विशेष प्रतिष्ठा है।

है। प्रायः भीली क्षेत्रों में भ्रमण के दौरान मैंने स्वयं देखा है कि वनांचल के रास्ते या किसी पहाड़ी पर अथवा तालाब या नाले के किनारे ढेर सारी छोटी-छोटी मिट्टी की उक्त सामग्री पड़ी हुई है, जिसके पास ही खड़ी मिर्च, नमक, सिन्दूर जैसे पदार्थ और न जाने क्या-क्या सामग्री बिखरी पड़ी है। यह सब संभवतः उनके पूजा-पाठ या टोने-टोटके से सम्बन्धित सामग्री रहती है। भूत-प्रेत, चुड़ैल-डायन आदि की भी काफी मान्यता इनमें है। भील प्रायः इनसे बचने के लिए या अन्य प्रकार की तत्संबधी साधना करने के लिए मिट्टी के विविध खिलौने, बर्तन व अन्य सामग्री का प्रयोग करते है। चित्र में झाबुआ जिले के आलीराजपुर में बनाया गया मिट्टी का घोड़ा है, जो भीली आदिवासी कला का उत्कृष्ट नमूना है—

भील आदिवासी अत्यधिक आस्थावान होने के कारण अनेक आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाते है, जिसे देखकर दर्शक दांतों-तले अंगुली दबा लेते है। दीपावली के अवसर पर भील अपने बैलों को विविध रंगों की बूंदों से पीठ पर, बगल में, माथे पर, खूब चित्रकारी कर सजा-संवाकर सीगों मे, माथे पर मयूर पंख तथा रंग-बिरंगी रस्सिया बांधकर उन्हें दौड़ाते है, और स्वयं उनके सामने लेट जाते है। बैल उन आस्थावान भीलो के ऊपर से दौडकर निकल जाते है, पर उन भीलो को कहीं चोट नही लगती। तथ्यतः कितनी श्रद्धा कितनी भक्ति इन भीलों में है!

इसी प्रकार भीली क्षेत्रों में एक-से-एक आश्चर्यजनक तथ्य दिखाई पड़ते है। आवश्यकता इस बात की है कि हम भीली (आदिवासी) कला की छिपी हुई धरती को उजागर करने का प्रयास करे, जो दिनोंदिन लुप्त होती जा रही है। भीली जीवन की गहराई में पैठकर अनेक उपलब्धियों से अलंकृत होना सभव है।

आवास एवं उद्यम

भील बीहड़ वनों और पहाड़ियों पर छिटपुट रूप से झोंपड़ी बनाकर रहते है। समन्वित वस्ती में रहना इन्हे पसद नही है। इनकी धारणा यह भी है कि अपने-अपने खेतों पर अपनी-अपनी झोंपड़ी बनाकर रहने से खेती की सुरक्षा होती है। कृषि ही इनके जीवन-यापन का प्रमुख स्रोत है, वह भी कंकरीली-पथरीली जमीन में जहां जलाभाव और अन्य कठिनाइयों के कारण अल्पतम अन्नोत्पादन होता है। अतः ये भील जो कुछ भी अन्न उपजे, उसकी कड़ी सुरक्षा-व्यवस्था करते है, अन्यथा पशु-पक्षी तो कृषि को हानि पहुचाते ही हैं, चोर भी फसलों को चुराने की घात लगाये रहते है। अतः भील अपने झोंपड़े अपने खेतों पर ही बनाते है।

भील अपने झोंपड़े को 'टापरा' कहते है। ये टापरे जगली लकड़ी काटकर बनाये जाते है, तथा इनकी छत घास-फूस की होती है। कुछ सम्पन्न भील मिट्टी की खपरैल बनाकर भी अपने टापरो को छाते है। इनके घरों (टापरों) मे एक ही कक्ष रहता है। उसी में खाना-पीना और सोना। पशु-पक्षी भी उसी में रहते है। यदि कोई सम्पन्नता का सपना देखता है तो वह दो टापरे पास-पास एक-दूसरे से सटे हुए बना लेता है, और उसी मे पशुओं को भी बांधता है। गाय, बैल, भैंस, बकरी, मुर्गे-मुर्गी—यही सब इनकी सम्पत्ति है।

नहाने-धोने अथवा दीर्घशंका, लघुशंका (लैट्रिन-बाथरूम) की व्यवस्था का तो कोई प्रश्न ही नही! खुले मैदान में ये दीर्घशंकार्थ जाते हैं तथा पानी का उपयोग बहुत कम भील आदिवासी करते है। नहाने के लिए नदी-नाले या कुएं का खुला उपयोग ये करते है। किंतु यदि कोई आदिवासी अपने को सम्पन्न समझता है तो वह अपने टापरे के पास टाट और लकड़ी का स्नानघर बना लेता है।

इनका शयन-कक्ष जाड़े में तो यही टापरा रहता है। जब

वगैरह खाकर निपट जाते हैं, तब उसी कोने में आग जला लेते हैं तथा फटे-पुराने कपड़ों के गोदड़े बनाकर जमीन पर ही सो जाते हैं। इनकी दशा बड़ी दयनीय होती है। मैंने स्वयं जब यह दृश्य देखा तो करुणार्द्र हो उठा। कड़कती ठंड में भी इनके बच्चे केवल एक नन्ही-सी झूलड़ी पहनकर समय काट लेते है। फिर सोने-बिछाने की अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराना तो असंभव ही है। हां, कुछ भील 'खाटले' (चारपाई) का उपयोग भी करते है। जंगली लकड़ी से ये खाट बना लेते है तथा सुतली से बीनकर गर्मी में इसी पर सोते है। मेहमानों की आव-भगत में इसीका उपयोग होता है।

भील तामसी वस्तुओ का अधिक उपयोग करते है, जैसे मांस, मदिरा, मुर्गे, अंडे आदि। अतः इनमें कामुकता भी अधिक होती है। एक आदिवासी कई पत्निया भी रखता है। संभोग की प्रक्रिया बच्चों के सो जाने पर ही शुरू होती है, अथवा खेतों जगलों में कार्य करते समय ही ये संभोग कर लेते हैं। बच्चों की अधिक संख्या भी इनकी दरिद्रता को बढ़ाती है। इनके बच्चे भी स्त्री-पुरुष के अनुरूप अवस्थानुसार कपड़े पहनने लगते हैं। जंगल में 'ढोर' (पशु) चराना इनका प्रमुख कार्य है; अतः जगल का एकांत वातावरण भी किशोर-किशोरियो को कच्ची उम्र में ही कामुकता की ओर उन्मुख कर देता है, जो इनके विकास में बाधक सिद्ध होता है।

भीलों के घरों मे निर्धनता का नग्न नृत्य देखकर तरस आता है। प्राय: दो-चार मिट्टी के बर्तन अल्युमीनियम की थाली-गिलास और पानी निकालने व पीने के लिए लौकी (आल) की तूमड़ी का उपयोग ये करते हैं। इनका प्रमुख भोजन मक्का होता है; अतः मक्के की बड़ी-बड़ी रोटिया ये मिट्टी के तवे पर बनाते हैं। रोटी कपड़े में बांधकर उसमें नमक-मिर्च रखकर ये मजदूरी करने या खेतों में काम करने निकल पड़ते हैं। जब भूख लगती है तो हाथों पर ही रोटी रखकर खा लेते हैं और हाथ से ही पानी पीकर मस्त हो जाते है। कभी-कभी दाल, सब्जी या मास भी खाते हैं। तेल प्रायः ये महुआ (डोली) का या मीठा तेल (मूंगफली का) उपयोग में लाते हैं।

भील अपने घरों के आस-पास सेम, तरोई, गिल्की अथवा अन्य

सब्जियां भी बो देते हैं, जो इनके खाने या बेचने के काम आती है। ये हाट में सब्जियां या कृषि-उत्पादन की सामग्री—कपास, उड़द, मूंग, मूंगफली, तुअर, चना और मुर्गे-मुर्गी, बकरे-बकरी आदि का क्रय-विक्रय करते हैं। साप्ताहिक हाटों में ये अपनी जरूरत की सामग्री का आदान-प्रदान करते रहते हैं।

औद्योगिक प्रगति के साथ अब खदानों तथा छोटी-छोटी कपास की फैक्टरियों, अन्य उद्योग-धंधों में भी कार्य करने लगे हैं। शैक्षणिक विकास के क्रम में बच्चे स्कूल भी जाने लगे हैं। प्रौढ़ पाठशालाओं में पढ़ने की व्यवस्था भी होने लगी है, जिसमें ये रुचि लेते हैं।

ईसाई मिशनरियों का प्रभाव भी इन पर काफी है, जिसकी बढ़ोत्तरी ही हो रही है। चर्चों तथा पादरी अस्पतालों-स्कूलों का जाल बिछता चला जा रहा है, जिसमें इन भोले-भाले आदिवासियों को उलझाने का भी कुचक्र गतिशील है किंतु इस यथार्थ से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इन आदिम जनजातियों के सामाजिक जागरण में ईसाई संस्थाओं की अद्वितीय भूमिका रही है। आज भी यहां सभी वर्गों का विशेष आकर्षण ईसाई अस्पतालों व स्कूलों के प्रति है।

खदानों में कार्य करने के लिए भील व भीलांगनाएं दोनों कठोर मेहनत से जुट जाते है। सुघर-सलोनी, सजी-धजी भील स्त्रियां, लड़कियां और लड़के सभी पत्थर तोड़ने में इतने निमग्न हो जाते है। उसे देखकर मुझे स्वयं कविवर निराला की कविता 'वह तोड़ती पत्थर' याद आ गई, जिसमें उन्होने अपनी आन्तरिक संवेदना उंडेल दी है। तथ्यतः निर्धन आदिवासियों का जीवन कितना श्रम-सिक्त होता है, फिर भी पेट भरने के लाले पड़ते है। इसी प्रसंग में निराला जी की कविता को उद्धृत करना उचित होगा—

वह तोड़ती पत्थर—निराला

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद (झाबुआ) के पथ पर

वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़, वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्मरत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार।
सामने तरुमालिका, अट्टालिका, प्राकार।
चढ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाया रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगी छा गई,
प्रायः हुई दुपहर—
वह तोड़ती पत्थर।
देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार
देखकर कोई नहीं—
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं, जो थी सुनी झंकार
एक क्षण के बाद वह कांपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
मैं तोड़ती पत्थर।

कविवर निराला यदि भीली क्षेत्र झाबुआ में गये होते तो भोली-भाली भीलांगनाओं को पत्थर तोड़ते हुए देखकर कलप उठते। उनकी

आत्मा कितना कोसती, उस सबसे पिछड़े क्षेत्र को देखकर जहां सन् १९८१ की जनगणना मे भी शिक्षा का प्रतिशत १५.५४ (साक्षरता) है। यही नहीं वरन् भीलांगनाएं मजदूरी करने के बाद घर-गृहस्थी का सारा कार्य भी बड़ी लगन व निष्ठा के साथ संभालती है। सुबह ८ बजे से सायं ६ बजे तक मजदूरी करने के बाद जब भील स्त्रियां घर लौटती हैं, तो मजदूरी में प्राप्त राशि से प्रायः मक्का खरीदती हैं। उसे घर लाकर तुरंत चक्की में पीसती है। प्रायः अधिक रात गये ये रोटी बनाती व नमक-मिर्च के साथ खाकर सो जाती हैं। प्रायः हर भील परिवार की यही दिनचर्या है।

वृद्धा भील महिलाएं जो मेहनत का काम नहीं कर सकतीं, वे प्रायः जंगलों में जाकर लकड़ी-कंडे बीनती तथा उसे बाजार में बेचती हैं। आज की पनपती हुई चालाक प्रवृत्ति के प्रभाव में गांव भी आते जा रहे है। भीली क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं बचा है। ग्रामीण वृद्धा स्त्री जंगल से छोटी-छोटी लकड़ियां बीनकर लाती हैं, फिर बाजार में प्रवेश से पहले एक स्थान पर बैठकर इस प्रकार बनाती हैं कि लकड़ी की मोली (गट्ठर) बड़ी दिखाई पड़े। इससे खरीदने वाले समझते हैं कि लकड़ियां अधिक है। कुछ अधिक पैसे प्राप्त कर लेने के लालच में ये लकड़ियों की ऐसी मोली बनाती हैं।

उद्यमी आदिवासी कठोरतम श्रम करने के बाद भी अपनी उदर-पूर्ति के लिए दर-दर की ठोकरें खाते रहते हैं। भीली क्षेत्रों में बेरोजगारी की भी एक जटिल समस्या है। फसलों की कटाई के समय आदिवासी राजस्थान व अन्य प्रान्तो की ओर बड़ी संख्या में प्रस्थान करते हैं, जिसकी भीड़भाड़ झाबुआ व [illegible] रेल्वे-स्टेशनों पर देखी जा सकती है। उनकी निर्धनता का मार्मिक दृश्य तो इसी समय देखते बनता है, जब वे हाथ पर [illegible], नमक-मिर्च [illegible] हुए, चिथड़ों में लिपटे दिखाई देते हैं।

आज के औद्योगिक [illegible], मशीनों, [illegible] करने वाले भील परिवारों के [illegible] है [illegible] स्वयं देखा है, जिनको [illegible] आयोजित [illegible] प्रयास में हूं। इन [illegible]

समाधान हो जाने पर ये अपराधी प्रवृत्ति को त्याग सकते हैं—ऐसी पूर्ण संभावना है।

निष्कर्षतः मैं यही कहना चाहता हूं कि इन आदिवासियों की क्षमता का लाभ कृषि उद्योग आदि के विस्तृत विकास में किया जाना उपयुक्त होगा।

भीलों पर शोध का संक्षिप्त विवरण

(भीलों पर शोध व शोधकर्ता)

१६३८-३६ में डब्लू० कॉपर्स और एल० जुगब्लट (W. Koppers, L. Jungblut) ने मध्य प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र झाबुआ में रहकर भीलों पर काफी काम किया। यह स्थान (रम्भापुर-पंचकुई चर्च) गुजरात और राजस्थान की सरहद पर पड़ता है, अतः भीली क्षेत्र के अध्ययन हेतु अत्यधिक उपयुक्त है। आज भी झाबुआ का (पचकुई-रम्भापुर चर्च) यह स्थान अपने अतीत और वर्तमान की प्रतिष्ठा का परिचायक है।

भीली भाषा (बोली) का व्याकरण जुगब्लट ने इसी अवधि में प्रकाशित कराया था। इन दोनों विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तक 'बो मेन ऑफ मिड इंडिया' (Bowmen of Mid India, दो खण्डों मे) अत्यधिक सारगर्भित व भीली जीवन को प्रतिबिंबित करनेवाली है। इन दोनों महानुभावों ने भील-क्षेत्र में रहकर ही उनकी समस्त गतिविधियों का गंभीर अध्ययन कर बहुत कुछ तथ्य उजागर किया।

१८०२-२२ तक जेम्स टाड प्रथम शोधकर्ता थे, जिन्होंने आदिवासी जीवन के अध्ययन के साथ भीली भाषा-साहित्य व उनके जीवन सम्बन्धी क्रिया-कलाप का अध्ययन कर तथ्यों को उजाकर किया। जेम्स टाड राजपूतों के सपर्क में भी खूब रहे, अतः राजपूत व भील सम्बन्धों को उन्होने गंभीरता के साथ परखा व उजागर किया। इस विषय में १६३६ का उनका प्रकाशन विशेष महत्त्वपूर्ण है। भीलों की श्रद्धा और वचन-बद्धता की उन्होने विशेष सराहना की है।

१८२३ में जॉन मोलकम (John Molcolm) ने भीलो की परि-स्थितियों का बहुत बारीकी से परीक्षण कर इसी वर्ष उसे करा दिया। इसमें झाबुआ के भीलों का विशेष विवरण था।

निमाड़, गुजरात तथा राजस्थान के भीलों पर भी इनका कार्य प्रशंसनीय रहा। भीलों के दारू (शराब) पीने की प्रवृत्ति को अहितकर बताते हुए उसमें सुधार की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। भीली बोली पर भी मालकम का ध्यान आकर्षित हुआ।

१८२४ में आर० हेबर (R. Heber) ने अजमेर से नीमच के बीच रहनेवाले भीलों पर विशेष कार्य किया। वैसे तो डूगरपुर बासवाड़ा प्रतापगढ़, दोहद आदि क्षेत्रों में भी उन्होंने जो कार्य किया, वह प्रशंसनीय था। भीलों के शारीरिक गठन, रंग, और निर्वस्त्र रहने की प्रवृत्ति आदि पर आपका कार्य अच्छा रहा। भीलों का चरित्र, निर्धनता और सामाजिक जीवन की अन्य परिस्थितियों का हेबर ने अध्ययन किया।

१८५० में एल० रिगबे (L. Rigby) ने खानदेश के पश्चिमी क्षेत्र में रहनेवाले भीलो के रहन-सहन आदि का अध्ययन करके उन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया। भीलो की नैतिकता को रिगबे ने सराहा। भीलों के वैवाहिक जीवन पर भी उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला। यही नहीं, वरन् इस समस्त सामग्री को तत्काल उन्होंने प्रकाशित कराया।

१८७५ में टी० एच० हेण्डले (T. H. Hendley) ने जो ब्रिटिश सेना के डॉक्टर थे, भीलों की वंश-परंपरा, पैतृकता आदि का गंभीर अध्ययन किया। मेवाड़ के भीलों में रहकर उन पर विशेष कार्य करते हुए, उनके धनुर्धारी होने की महत्ता पर भी हेण्डले ने प्रकाश डाला। भीलों के तीर-धनुप की तुलना उन्होंने अफ्रीका के धनुर्धारी आदिवासियों से की। इनकी कृषि और आर्थिक दशा का भी विवेचन हेण्डले ने किया। भीलो की शिकार-कुशलता की भी सराहना उन्होंने की। भीली गीत भी उन्हें पसंद आये।

१८७९ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित 'राजपूताना गजेटियर' में भीलों की विविध समस्याओं को सविस्तार प्रकाशित किया गया। भीलों की बिखरी हुई बस्तियों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया। विधवा-विवाह का प्रसंग भी आया जिसमें स्त्री के पुनर्विवाह को मान्य किया गया। भीलो के पूजा-पाठ पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-आराधना आदि पर भी विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया।

१८८० ई० में जेम्स एम० कैम्पवेल (J. M. Campbell) ने भीलों और निषादों पर कार्य किया। भीलों की झोंपड़ी से लेकर उनके वैवाहिक सम्बन्धों तक विशेष अध्ययन किया गया। अन्य जन-जातियों तथा भीलों के रीति-रिवाजों की तुलना में भी केम्पवेल ने काफी रुचि ली।

१८८१ की जनगणना में भीलों की स्थिति और भी स्पष्ट हुई। हिन्दुत्व की महत्ता में समाविष्ट इनके सभी रीति-रिवाज पूजा-पाठ आदि का मूल्यांकन विविध रूपों में किया गया। ई० बी० टायलर ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया।

१९०२ ई० में एच० डी० वैनरमैन (H. D. Bannerman) ने उक्त जनगणना के आधार पर भीलों की अनेक समस्याओं की विवेचना की, जिसमें उनके राजपूतों से सम्बन्ध आदि को विस्तार दिया गया था। इसी परिप्रेक्ष्य में मेवाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों के भीली जीवन की समीक्षा की गई। राजपूतों के सिंहासन पर आरूढ़ होने के समय भीलों द्वारा रक्त का तिलक लगाने की प्रथा को परखा गया। ग्रामीण व शहरी संपर्क तथा भीलों के सत्य बोलने की प्रवृत्ति को सराहा गया।

१९०२ ई० में श्री सी० ई० ल्यूअर्ड ने भीलों की सांस्कृतिक महत्ता को परखने का प्रयास किया, जिसमें उनकी पूजा-उपासना की पद्धति को उजागर किया। भील बड़ा देव या भगवान् की उपासना करते हैं। उनकी असीम आस्था इस देव के प्रति रहती है। १९०२ में ही जे० आर० दलाल (Jamshedji Ardeshir Dalal) ने भीली बोली के विषय में प्रशंसनीय कार्य किया।

१९०६ ई० में ई० वार्नस (E. Barnes) ने झाबुआ जिले के भीलों पर पर्याप्त कार्य किया, जो १९०६-१९०७ में प्रकाशित भी हो गया। भीली जीवन की अनेक समस्याओं पर लेखक ने बड़ी बारीकी से प्रकाश डाला।

१९०७ ई० में जी० ए० ग्रियर्सन (G.A. Grierson) ने भाषाओं के सर्वेक्षण कार्य में जो कीर्तिमान स्थापित किया, उसमें भीली बोली पर किया गया कार्य भी प्रशंसनीय है। भीली भाषा भारत के पश्चिमी

क्षेत्र में अजमेर से लेकर औरंगाबाद के पास तक फैली हुई है, जिसकी सोमा धूलिया व मनमाड तक है। भीली भाषा अन्य भारतीय भाषाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, जिस पर आधुनिक भारतीय विद्वानों ने भी गंभीरता से विचार किया है।

१९०९ ई० में सी० ई० ल्यूअर्ड (C.E. Luard) ने पुनः इन भीलों पर १९०१, १९११ तथा १९२१ की जनगणना के आधार पर विशेष अध्ययन किया तथा उनके समस्त जीवन का मूल्यांकन कर उसे प्रकाशित कराया। १९०९ में प्रकाशित इस सामग्री के शोधपूर्ण तथ्य अत्यधिक उपयोगी हैं। यह अपने ढंग का अद्वितीय प्रकाशन था। ल्यूअर्ड की उपलब्धियाँ शोधकर्ताओं द्वारा सराही गई।

१९०९ ई० में डब्लू क्रोक (W. Crooke) ने भीलों की धार्मिक भावना का गंभीर अध्ययन किया तथा भीलों की विविध शाखाओं पर, उपजातियों के वर्गीकरण पर विशेष कार्य किया। क्रोक का यह कार्य भी शोधार्थियों द्वारा सराहा गया। तथा आगे कार्य करनेवालों के लिए यह सामग्री विशेष उपयुक्त सिद्ध हुई।

१९१३ में एल० मेले (L. S. S. O. Malley) ने जनगणना पूर्व तथ्यों के आधार पर बंगाल में रहनेवाले भीलों का पता लगाया। सैकड़ों वर्ष पूर्व के तथ्यों तथा ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के आधार पर मेले ने इन आदिवासियों के विषय में विशेष शोध-सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया। मिदनापुर क्षेत्र का इस अध्ययन में प्रमुख स्थान था।

१९१६ ई० में आर० वी० रसेल (R. V. Russel) का कार्य चार भागों में प्रकाशित हुआ, जो मध्य भारत की अनुसूचित जातियों और अनुसूचित-जनजातियों के विषय में सविस्तार शोधपूर्ण सामग्री से भरपूर है। यह सामग्री भीलों व अन्य सभी जातियों के विषय में जानकारी की अनुपम थाती है।

१९२१ की जनगणना में ईसाई और मुस्लिम धर्म स्वीकार करने वाले भीलों पर विशेष प्रकाश पड़ा। हिन्दू भीलों की धार्मिक भावना के परिप्रेक्ष्य में अनेक तथ्य उजागर किये गये। खानदेश के भीली क्षेत्र पर कुछ शोधकर्ताओं ने गंभीरतापूर्वक कार्य किया। भीलों की श्रद्धा

का केन्द्र वह परम शक्ति है, जो सर्वव्यापी है—'सुप्रीम पावर' की महत्ता से मंडित। भीलों की सामाजिक व धार्मिक स्थितिया इस जनगणना के मूल्यांकन में उभर कर आयी। सी० ई० ल्यूअर्ड, एस०वी० मुखर्जी तथा जानकीनाथ दत्त का इसमें सहयोग सराहनीय रहा।

१९२३ ई० में एस० सी० राय द्वारा राजस्थान के काले भीलों पर लिखा गया तथ्य विशेष प्रशंसनीय रहा। भीलो में 'कालिया' नाम विशेष प्रचलित है, जो सभवतः उनके कालेपन का परिचायक है। उदयपुर क्षेत्र इस शोध-कार्य का प्रमुख केन्द्र-विन्दु रहा। भीलों की प्रथाएं, रूप-रग, रहन-सहन आदि पर भी शोध-कार्य किये गये।

१९२७ ई० में ई० हेडवर्ग (E. Hedberg) ने पश्चिमी खानदेश के भीलों पर शोध-कार्य किया, जिसमें उनकी निरक्षरता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। गोंड़ और संथालो के बाद भीलों का भारतीय आदिवासियों में तीसरा स्थान है। हेडवर्ग ने भीलों की बौद्धिक क्षमता का भी परीक्षण बडी बारीकी के साथ किया और मध्य प्रदेश की अन्य जनजातियों की बोली के आधार पर उनका मूल्यांकन करने का प्रयास किया। भीलों के विविध नाम उनकी मूल भाषा से सम्बद्ध कर परखे गये, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था। भीलों के पारिवारिक जीवन पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया। भील स्त्रियों की स्वच्छंदता तथा पातिव्रत की सराहना की गई। स्वच्छंदता से तात्पर्य है कि भीलागनाएं अपने परिवार में रहकर पति या अन्य सम्बन्धियों द्वारा सतायी नहीं जाती, वरन् उनका जीवन पारिवारिक आनंद व आह्लाद से ओतप्रोत रहता है। जीवन का वास्तविक सुख भील दम्पति अत्यधिक सादगी के साथ लेते है।

१९३१ ई० की जनगणना के आधार पर ए० एच० ड्राकप (A. H. Dracup) तथा एच० सोर्ले (H. Sorley) ने भीलों की अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया। इसमें पश्चिमी खानदेश के भीलों की परिस्थितियों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। भील जंगलों में निवास करते हुए कंद-मूल-फल, जंगली जड़ी-बूटियों आदि का भरपूर

क्षेत्र में अजमेर से लेकर औरंगाबाद के पास तक फैली हुई है, जिसकी सीमा धूलिया व मनमाड तक है। भीली भाषा अन्य भारतीय भाषाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, जिस पर आधुनिक भारतीय विद्वानों ने भी गंभीरता से विचार किया है।

१६०६ ई० में सी० ई० ल्यूअर्ड (C.E. Luard) ने पुनः इन भीलों पर १६०१, १६११ तथा १६२१ की जनगणना के आधार पर विशेष अध्ययन किया तथा उनके समस्त जीवन का मूल्यांकन कर उसे प्रकाशित कराया। १६०६ में प्रकाशित इस सामग्री के शोधपूर्ण तथ्य अत्यधिक उपयोगी है। यह अपने ढंग का अद्वितीय प्रकाशन था। ल्यूअर्ड की उपलब्धियां शोधकर्ताओं द्वारा सराही गईं।

१६०६ ई० में डब्लू क्रोक (W. Crooke) ने भीलों की धार्मिक भावना का गंभीर अध्ययन किया तथा भीलों की विविध शाखाओं पर, उपजातियों के वर्गीकरण पर विशेष कार्य किया। क्रोक का यह कार्य भी शोधार्थियों द्वारा सराहा गया। तथा आगे कार्य करनेवालों के लिए यह सामग्री विशेष उपयुक्त सिद्ध हुई।

१६१३ में एल० मेले (L. S. S. O. Malley) ने जनगणना पूर्व तथ्यों के आधार पर बंगाल में रहनेवाले भीलों का पता लगाया। सैकड़ो वर्ष पूर्व के तथ्यों तथा ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के आधार पर मेले ने इन आदिवासियों के विषय में विशेष शोध-सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया। मिदनापुर क्षेत्र का इस अध्ययन में प्रमुख स्थान था।

१६१६ ई० में आर० वी० रसेल (R. V. Russel) का कार्य चार भागों में प्रकाशित हुआ, जो मध्य भारत की अनुसूचित जातियों और अनुसूचित-जनजातियों के विषय में सविस्तार शोधपूर्ण सामग्री से भरपूर है। यह सामग्री भीलों व अन्य सभी जातियों के विषय में जानकारी की अनुपम थाती है।

१६२१ की जनगणना में ईसाई और मुस्लिम धर्म स्वीकार करने वाले भीलों पर विशेष प्रकाश पड़ा। हिन्दू भीलो की धार्मिक भावना के परिप्रेक्ष्य में अनेक तथ्य उजागर किये गये। खानदेश के भीली क्षेत्र पर कुछ शोधकर्ताओं ने गंभीरतापूर्वक कार्य किया। भीलों की श्रद्धा

का केन्द्र वह परम शक्ति है, जो सर्वव्यापी है—'सुप्रीम पावर' की महत्ता से मंडित! भीलों की सामाजिक व धार्मिक स्थितिया इस जनगणना के मूल्यांकन में उभर कर आयी। सी० ई० ल्यूअर्ड, एस०वी० मुखर्जी तथा जानकीनाथ दत्त का इसमे सहयोग सराहनीय रहा।

१६२३ ई० में एरा० सी० राय द्वारा राजस्थान के काले भीलों पर लिखा गया तथ्य विशेष प्रशंसनीय रहा। भीलों में 'कालिया' नाम विशेष प्रचलित है, जो संभवतः उनके कालेपन का परिचायक है। उदयपुर क्षेत्र इस शोध-कार्य का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु रहा। भीलो की प्रथाएं, रूप-रग, रहन-सहन आदि पर भी शोध-कार्य किये गये।

१६२७ ई० में ई० हेडवर्ग (E. Hedberg) ने पश्चिमी खानदेश के भीलों पर शोध-कार्य किया, जिसमे उनकी निरक्षरता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। गोंड़ और संथालों के वाद भीलों का भारतीय आदिवासियों मे तीसरा स्थान है। हेड्वर्ग ने भीलो की बौद्धिक क्षमता का भी परीक्षण वड़ी वारीकी के साथ किया और मध्य प्रदेश की अन्य जनजातियों की वोली के आधार पर उनका मूल्यांकन करने का प्रयास किया। भीलों के विविध नाम उनकी मूल भाषा से सम्बद्ध कर परखे गये, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था। भीलों के पारिवारिक जीवन पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया। भील स्त्रियों की स्वच्छंदता तथा पातिव्रत की सराहना की गई। स्वच्छंदता से तात्पर्य है कि भीलांगनाएं अपने परिवार में रहकर पति या अन्य सम्बन्धियों द्वारा सतायी नही जाती, वरन् उनका जीवन पारिवारिक आनंद व आह्लाद से ओतप्रोत रहता है। जीवन का वास्तविक सुख भील दम्पति अत्यधिक सादगी के साथ लेते है।

१६३१ ई० की जनगणना के आधार पर ए० एच० ड्राकप (A. H. Dracup) तथा एच० सोर्ले (H. Sorley) ने भीलों की अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया। इसमें पश्चिमी खानदेश के भीलों की परिस्थितियों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। भील जंगलों में निवास करते हुए कंद-मूल-फल, जंगली जड़ी-बूटियों आदि का भरपूर

सेवन करते हैं। इनके बच्चों को पैदा होने के बाद मदिरा पिलाने को प्राथमिकता दी जाती है। अर्थात् दो-चार बूंद मुंह में डाल दी जाती है।

१९३१ ई० में ई० वी० इकस्टेड (E. V. Eickstedt) भी भारत में आने के पश्चात् भीलों से प्रभावित हो, उनपर शोध-कार्य करने में संलग्न हो गये। झाबुआ जिले के जोवट क्षेत्र को उन्होंने विशेष पसंद किया, जो आलीराजपुर के समीप है और जहां हत्याओं का सर्वाधिक प्रतिशत पूरे प्रदेश स्तर पर मान्य है। भीलों के जीवन की समस्त गतिविधियों को परखने का इनका प्रयास प्रशंसनीय रहा।

१९३१ ई० में बी० एस० गुहा (B. S. Guha) ने भीलों पर शोध-कार्य मानव शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में किया, जबकि इसी अवधि में एस० वी० मुखर्जी ने भीलों और गूजरों की यथार्थ स्थिति का मूल्यांकन किया।

१९३७ ई० में पॉल कोनराड (Paul Konrad) ने, जो जुंगब्लट के सहायक थे, भीलों पर शोध-कार्य में विशेष रुचि ली। उन्होंने भीलों की विविध परिस्थितियों का मूल्यांकन मध्य प्रदेश को केन्द्र-बिन्दु मानकर किया। इनका शोध-कार्य भी नवीन तथ्यों के साथ सराहनीय माना गया।

१९५६ ई० में टी० बी० नायक (T. B. Naik) ने भीलों पर विशेष शोध-कार्य किया, जो बहुचर्चित व प्रशंसनीय रहा। गुजरात, राजस्थान और मध्य प्रदेश के भीलों पर आधारित यह कार्य उनकी समस्त जीवन-पद्धति की परख के साथ अनेक तथ्यों को उजागर करने वाला रहा। श्री नायक ने दो-ढाई वर्षों तक इस क्षेत्र का गहन अध्ययन कर पर्याप्त रोचक शोध-सामग्री एकत्रित की और भीलों की ईमानदारी का विशेष गुणगान किया। इनके यौन-सम्बन्धों पर भी सविस्तार प्रकाश डाला गया। भीलों की सांस्कृतिक गरिमा और धार्मिक भावना का गंभीर विवेचन भी श्री नायक ने किया।

१९५८ ई० में इरावती कर्वे (Irawati Karve) तथा १९६० में श्री एस० नाथ (Y. V. S. Nath) का कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण रहा। मालवा क्षेत्र के भीलों पर किये गये कार्य भी महत्त्वपूर्ण रहे, जो उनके

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, झाबुआ

१९८१-८२ में केवल झाबुआ के १२ विकास खंडों में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अतर्गत २४ लाख रुपयों का प्रावधान है। १-४-८१ से ३१-३-८२ तक उद्योग शीर्ष के अतर्गत कुल २८६७ हितग्राही लाभान्वित हुए। यह उपलब्धि झाबुआ के लिए आदर्श है। इन हितग्राहियो में ११०८ प्रशिक्षण में तथा १७५० ऋण अनुदान की योजना में लाभान्वित हुए।

इसी अवधि में १७५९ हितग्राहियों को २५,६७,३३७ रु० का ऋण दिया गया तथा ९,६१,१७५ रु० का सहायता अनुदान स्वीकृत हुआ। स्वीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जो अनुदान व ऋण दिया गया, उनमें ३६६ आदिवासी, ५५९ हरिजन रहे है। इनमें ३५२ महिलाएं भी है। अनुदान प्रति हितग्राही औसतन ५४६.४३ रु० तथा ऋण प्रति हितग्राही औसतन १४५९.५४ रुपये दिये गये।

ट्रायसेम योजनान्तर्गत वर्ष १९८१-८२ में ११०८ ग्रामीण युवजनों को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षित किया गया। प्रशिक्षित हितग्राहियो में ५४.१५% आदिवासी, १८.६८% हरिजन तथा २७.१७% अन्य वर्ग के लोग है। इसी ट्रायसेम योजनान्तर्गत मेसर्स इन्स्टीट्यूट आफ इन्जीनियरिंग, अहमदाबाद के सहयोग से झाबुआ परियोजना में ६० प्रशिक्षणार्थियों के लिए इलेक्ट्रिक वायरिंग तथा इलेक्ट्रिक मोटर रिवाइन्डिग का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

१९८१-८२ में १२० इकाइयों के बदले २२७ नये उद्योग तथा १३१ सुदृढीकरण उद्योग स्थापित किये गये। इसमें स्थायी पूंजी के रूप में १४,३४,०४२ रुपये तथा कार्यशील पूंजी के रूप में २०,२०,६५० रुपये धनावेष्ठन हुआ। नये उद्योगों में ७६४ व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराया गया है।

१९८१-८२ में नये उद्योगों की स्थापना में निम्नलिखित स्थिति रही है—

	इकाइयां	धनावेष्ठन	रोजगार
आदिवासी	२७	५३०७५	२८
हरिजन	१०२	२६६१५०	३००

१८७ नये उद्योगों का पंजीकरण भी हुआ।

खादी ग्रामोद्योग योजनान्तर्गत १९८१-८२ में ७२ व्यक्तियों को रोजगार दिलाया गया।

इसी क्रम में ६१ उद्यमियों के प्रस्ताव तैयार किये गये जिसमे ९०१५५.०० रुपये का ऋण तथा ४५३५५.०० रुपये का अनुदान उपलब्ध कराया गया। इसमें कुम्हारी, तेलघानी, लुहारी, सुतारी आदि प्रमुख है। १९८१-८२ में भारत शासन द्वारा गठित 'ट्रास्क फोर्स कमेटी ने भी जिले में भ्रमण कर पूर्ण परख के साथ 'न्यूक्लियस प्लांट' स्थापना की सिफारिश की है।

राजस्थान व बंगाल के उद्यमी भी उद्योगों की स्थापना हेतु क्रियाशील है। १३.४० करोड़ के उद्योग की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है।

उद्योग

झाबुआ जिले के औद्योगिक विकास हेतु १९८१-८२ में १८७ नये प्रस्तावों का अस्थायी पंजीयन किया गया। इससे १२०८ लोगों को रोजगार मिलेगा तथा १८७८ हार्स पावर विद्युत् शक्ति की आवश्यकता होगी। प्रस्तावित उद्योगों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है—

परियोजना	प्रस्ताव	अस्थायी पंजीयन लाखों में	रोजगार
आलीराजपुर	५६	१४.२९	२८०
झाबुआ परियोजना	१३१	४९.४८	९२८

१. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, १९८१-८२ से साभार।

नये पंजीकृत उद्योगों में मोनो फिलामेंट यार्न, हेसियन क्लाथ, वायरमेश, राकफास्फेट, ग्राइंडिंग, कांटेदार तार, सिमेन्ट आर्टिकल्स, मोजेक टाइल्स, मेंगलोर टाइल्स, एल्यूमिनियम के बर्तन, स्टोन क्रशिग, कनफेक्शनरी आदि का विशेष स्थान है।

जिन उद्योगों का स्थायी पंजीयन हुआ है, वे प्रमुखतः इस प्रकार हैं—सिमेंट पाइप, रॉक फास्फेट, ग्राइंडिंग, सागोल, मोनो फिलामेंट, यार्न, अनाज पिसाई, मैंगलोर टाइल्स, कृषि उपकरण वर्कशाप, स्वेटर निटिंग, नलीदार कोयला, स्टील फर्नीचर आदि।

स्थायी रूप से पंजीकृत उद्योगों की संक्षेपिका इस प्रकार है—

परियोजना	उद्योग संख्या	वेष्ठितपूंजी लाखों में	रोजगार	विद्युत्
झाबुआ	५७	३२.३७	५५४	४२७
आलीराजपुर	३	३.०८	१५	२०
योग	६०	३५.४५	५६९	४४७

संक्षिप्ततः प्रगति विषयक अन्य आंकड़े प्रस्तुत हैं।

जिला उद्योग केन्द्र झाबुआ[1]

वित्तीय उपलब्धियां १९८१-८२

क्रम	मद	आलीराजपुर परियोजना		झाबुआ परियोजना	
		भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय
१.	केन्द्रीय पूंजी अनुदान	—	—	१३	१६१७६३
२.	राज्य पूंजी अनुदान	२	८५६७	१८	४५२६७
३.	विक्रय का अनुदान	६	१८९२७३	५	२५४११
४.	ब्याज अनुदान	—	—	—	१००००
५.	भूमि अर्जन	—	—	—	३४०४५०
६.	परियोजना निधि	—	५०००	—	—
	योग	८	१२२८४०	३६	५८२८९१

१. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, १९८१-८२ से साभार।

आय० आर० डी० कार्यक्रम—वर्ष १९८१-८२

विकास खण्डवार प्रगति[1]

विकास खण्ड	ऋण	अनुदान रु०	हितग्राही
१. झाबुआ	३८४७२४	१५८४९१	२८१
२. रामा	१४३८४५	५६०८२	९९
३. मेघनगर	१०९४८८	३८२२९	१०७
४. थांदला	११८३३५	४५३६३	९४
५. पेटलावद	३५२५८५	१२६९९७	२११
६. राणापुर	७७५७५	२८५६८	८७
झाबुआ परियोजना	११८६५३२	४५३७३०	८७९
१. उदयगढ़	११०४००	४७८७४	७८
२. जोवट	५१७१५५	१७८५५३	२६९
३. भाभरा	१८४१५०	६९४२२	१५३
४. कट्ठीवाड़ा	५५५००	२०६५८	३४
५. आलीराजपुर	३९८३५०	१४२९५७	२२१
६. सोण्डवा	११५२५०	४७९८१	१२५
आलीराजपुर परि०	१३८०८०५	५०७४४५	८८०
महायोग	२५६७३३७	९६११७५	१७५९

उद्योग एवं सेवा बैंकवार प्रगति[2]

क्रमांक बैंक	ऋण	अनुदान	संख्या
१. बैंक आफ बड़ौदा	११६२९०३	४५१३६०	७९२
२. केन्द्रीय सहकारी बैंक	२३०००	८३२७	५१९
३. झाबुआ-धार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	८२८१२९	३०५८१७	५४५
४. स्टेट बैंक आफ इंडिया	२३३११७०	८१५५०	२१६
५. स्टेट बैंक आफ इन्दोर	३२२११३५	११४१२१	१८७
योग	२५६७३३७	९६११७५	१७५०

१. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, १९८१-८२ से साभार।

२. वही।

हितग्राहियों का विश्लेषण

आदिवासी	हरिजन	महिलाएं	अन्य
३६६	५५०	३५२	८३४

ट्रायसेम योजना—वर्ष १९८१-८२
विकास खण्डवार उपलब्धियां[1]

क्र०	विकास खंड	प्रशिक्षणार्थी		फालोअप	
		८०-८१	८१-८२	८०-८१	८१-८२
१	झाबुआ	१२६	४१	४३	२०
२.	रामा	६३	४४	३०	२३
३.	मेघनगर	३७	००	३५	००
४	थादला	८४	००	७४	००
५.	पेटलावद	९४	५२	८१	५२
६.	रानापुर	७६	३६	५०	१२
	योग	४८०	१७३	३१३	१०७
७	आलीराजपुर	१२	१४	००	७
८.	सोण्डवा	३६	३५	२०	१९
९.	भाभरा	६६	१८	५३	००
१०.	कट्ठीवाडा	२४	२०	१५	१०
११.	जोबट	१०५	१८	८५	१७
१२.	उदयगढ़	५९	४८	४०	४०
	योग	३०२	१५३	२१३	१०१
	महायोग	७८२	३२६	५२६	२०८

फोलोअप ६६.२४ प्रतिशत

१. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, १९८१-८२ से साभार।

आय० आर० डी० कार्यक्रम वर्ष—१९८१-८२
लाभान्वित हितग्राही (अनुदान)[1]

क्रम	विकास खण्ड	कुल हितग्राही	उद्योग	सेवा व्यवसाय	ट्रायसेम ट्रेनी
१.	झाबुआ	२८१	२१४	४६	२१
२.	रामा	९९	६५	१४	२०
३.	मेघनगर	१८७	६१	१४	३२
४.	थांदला	९४	२६	९	५९
५.	पेटलावद	२११	९९	७७	३५
६.	रानापुर	८७	६८	४	१५
	झाबुआ परि०	८७९	५३३	१६४	१८२
१.	उदयगढ़	७८	३७	८	३३
२.	जोबट	२६९	१२१	१३७	११
३.	भाभरा	१५३	८०	४६	२७
४.	सोंडवा	१२५	९९	१०	१६
५.	आलीराजपुर	२२१	१२०	९७	४
६.	कट्ठीवाड़ा	३४	२७	१	६
	आलीराजपुर परि०	·८८०	४८४	२९९	९७
	प्रतिशत		५७.८१	२६.३२	१५.८७

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उपलब्धियां[2]

१९८१-८२

कुल हितग्राही अनुदान—१७५९

प्रशिक्षण—११०८

औसत हितग्राही प्रति विकास खण्ड— २३८.९१

औसत ऋण प्रति हितग्राही—१४५९.५४ रु०

औसत अनुदान प्रति हितग्राही— ५४६.४३ रु०

---

१. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, १९८१-८२ से साभार।

२. वही।

प्रशिक्षित हितग्राहियों का प्रतिशत

आदिवासी—५४.१५
हरिजन—१८.६८
अन्य—२७.१७

अनुदान के हितग्राहियों का प्रतिशत

आदिवासी—२०.८१
हरिजन—३१.७८
अन्य—४७.४१

वित्तीय संस्थाओं का योगदान प्रतिशत

१. बैंक आफ बड़ौदा —४५.२६
२. झाबुआ-धार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक—३२.३२
३. भारतीय स्टेट बैंक —८०.९९
४. स्टेट बैंक आफ इन्दौर —१२.५४
५. केन्द्रीय सहकारी बैंक — ०.८९

नोट—आदिवासी उत्थान, विशेष रूप से भीली क्षेत्र के विकास की विशाल योजनाओं को आंकना आसान नहीं है। इन पृष्ठों में केवल झाबुआ प्रोजेक्ट का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। यदि पूरे भीली क्षेत्र की विकास योजनाओं को प्रस्तुत किया जाये तो कई पुस्तकें तैयार हो सकती हैं।

---

१. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, १९८१-८२ से साभार।

पंचवर्षीय योजना १९८०-८१ से १९८४-८५ तक—[illegible]

नाम योजना		८०-८१		८१-८२		८२-८३		८३-८४		८४-८५		योग	
		भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय	भौतिक	वित्तीय
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
१.	पचायत विभाग सामाजिक शिक्षा	३०	०.१३५	६२	०.४४२	६२	०.५२७	७४	०.६५८	४०	०.७६५	[illegible]	[illegible]
२.	पुस्तकालयों हेतु	४	००.०६	१२	०.०२	१४	०.१४०	१७	०.०१६	४०	०.०१६	[illegible]	[illegible]
३.	[illegible]-[illegible]	५	०.२१	९	०.२१	१०	०.१७	१५	०.०२१	१४			
४.	[illegible] ([illegible])	१	०.०१५	२	०.०३०	३	०.०४५	४	०.०६०	५	[illegible]	१५	[illegible]
५.	[illegible] ([illegible])	—	—	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
६.	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
७.	[illegible]	—	—	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
८.	[illegible]	—	[illegible]	—	[illegible]	—	[illegible]	—	[illegible]		[illegible]		[illegible]
	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

ABSTRACT SHOWING THE DEPARTMENTWISE SIXTH FIVE YEAR PLAN JHABUA PROJECT 1980-85 (Rs in Lakhs)

S N.	Name of Department	80-81 Fin	81-82 Fin	82-83 Fin	83-84 Fin	84-85 Fin	G. Total Fin
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	Irrigation	109.00	114.00	135.15	125.60	128.45	612.20
2.	Public Works Dept.	58.04	79.31	95 26	96 15	108.40	437 25
3.	Public Health Engineering	34.80	43.25	60.70	52.25	65 20	256 20
4.	Agriculture	36 34	42.07	54.12	52.22	54.64	239.39
5.	Forest	12.67	12.60	12.80	11.70	10 90	61.517
6.	District Health and Family Welfare	14 33	9.49	10.70	9.99	7 18	51.69
7.	Industries	1.30	1.82	2.70	3.65	4.70	14.17
8.	Veterinary	12.908	21.862	20.668	21 502	22.938	99.878
9.	Fisheries	1.07	1.23	1.51	1.56	1.80	7.17
10.	Co-operative	12.934	17.966	20.40	22.44	23.92	97.66
11.	Panchayat	1 257	0.92	1.089	1.317	1.583	6.166
12.	Tribal Welfare	27.510	36.422	41.384	48.112	52.220	205.648
13.	Project Administration	6.14	6.64	6.70	7.25	7.30	34.03

14.	D. P. V. P.	49.00	22 00	89 00	90 00	90.00	340.00
15.	I. R. D.	17.00	6.00	50.00	50.00	50.00	173.00
16.	N. R. E. P.	7.00	25.00	30 00	36.00	42.00	140.00
17.	Gramodaya	0 40	4.80	6.00	7.20	8.60	27.00
	Grand Total	401.098	443.830	638.181	636 041	679.921	2799.060

Integrated Tribal Development Project Jhabua, Sixth Five Year Plan 1980-81 to 1984-85.

JHABUA PROJECT

	80-81		81-82		82-83		83-84		84-85		G Total	
	Phy.	Fin	Phy.	Fin	Phy.	Fin	Phy.	Fin	Phy.	Fin	Phy.	Fin
Free distribution of Slate and Pencils to Primary School Students												
Tribals	8000	0.24	1000	0.30	12000	0.36	15000	0.45	20000	0.60	65000	1.95
Castes	500	0.015	700	0.021	900	0.027	1200	0.036	1500	0.045	48000	0.144
Ordinary Primary School	10	1.00	10	1.00	10	1.00	10	1.00	20	2 00	70	7.00
New Middle School	1	0.30	1	0.30	3	0 90	4	1.20	5	1.50	14	4.20
Construction of Primary School	4	2.00	8	4.00	8	4.00	10	5.00	10	5.00	40	20.00
Additional Subjects in H. S. S.	1	0.30	3	0.90	3	0 90	3	0.50	4	1.20	14	4.20
Construction of Ashram and Adarsh Ashram			1	2.00	1	2.00	1	2.00	1	2 00	4	8.00
Tractor Machine Station	2	0.70	3	0.80	3	0.80	3	0.90	3	90	0.90	4.10

Interzonal tours of Farmors	600	0.03	800	0.04	1000	0.05	1200	0.06	1400	0.07		0.25
Farmers Training	1400	0.07	1600	0.08	1800	0.09	2000	0.10	2280	0.11		0.45
Soil Conservation Loan	4300	21.14	5000	24.66	5700	28.18	6400	31.70	7100	32.22		137.90
Development of Nursury & Garden	3	0.16	3	0.19	3	0.22	3	0.25	3	0.28		1.10
Construction of Middle School Building	3	3.00	4	4.00	5	5.00		66.00	6	6.00	24	24.00
Construction of H. S. S. Building	1	1.50	1	1.50	1	1 50	1	1.50	1	1.50	5	7.50
Cons. of Pre. Matric Hostel Building	2	3.00	3	4.50	4	6.00	5	7.50	6	9.00	20	30.00
Cons. of Hostel Sup. Quarters	2	0.70	3	1.50	4	1.40	5	1.75	6	3.10	20	7.00
Cons. Primary School quarter	10	3.50	10	3.50	10	3.50	10	3.50	10	3.50	50	17.50

[Contd.]

[Contd]

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
Uniforms to students of class I to V												
Tribal Boys	16000	8.00	18000	9.00	20000	10.00	22000	11.00	24000	12.00	100000	50.00
Tribal Girls	2000	1.00	2200	1.10	2000	1.20	2600	1.30	3000	1.30	12200	5.90
Casts Boys ,	700	0.35	800	0.40	900	0.45	1000	0.50	1200	0.60	4600	2.30
Casts Girls	400	0.20	450	0.22	500	0.25	550	0 27	600	0.30	2500	1.24
Sports facilities												
Primary School 560		0.56		0.60		0.70		0 80		0.90	560	3.56
Middle School 96		0.50		0.60		0.70		0.80		0.90	96	3.50
H. S. S. 22		0.22		0.22		0.22		0.22		0 24	22	1.13
Turnament Block level	6	0.30	6	0.30	6	0.30	6	0.30	6	0.30	30	1.50
Turnarment Distt. level	1	0.15	1	0.15	1	0.15	1	0.15	1	0.15	5	0.75
Library Equipment and Library Books to Hostels	10	0.40	10	0.40	10	0.40	10	0.40	10	0.40	50	2.00
Special coatch to Hostels Post Matric	1	0.02	2	0.04	2	0.04	2	0.04	2	0.04	9	0.18
Total						36.422		41.384	48.112	52.220		205.648

Integrated Tribal Development Project Jhabua, Sixth Five Year Plan. 1980-81 to 1984-85,

परिशिष्ट–1

भारत की महत्त्वपूर्ण जन-जातियां

१९७१ की जनगणनानुसार[1]

सपूर्ण भारत में कुल लगभग ४२७ जन जातियां हैं जिसमें प्रमुख ये हैं—

जाति का नाम	संख्या लाखों में
गोंड	३९.९१
भील	३८.३८
सन्थाल	३१.५४
ओरो	१४.१७
मीणा	११.५५
मुन्डा	१०.१९
धोड	८.४५
कच्चाड़ी	६.५४
होस	४.९९
नागा	४.६६
सोरा/सवारा	४.३२
कोल	४.३२
कोली	४.१८
सासी	३.५६
कवार	३.३४
अन्य सभी जनजातियां	१०८.६९
कुल	२९८.७९

१. धर्मयुग, २ दिसम्बर, १९७३।

परिशिष्ट-२

राज्यानुसार आदिवासी

१९७१ की जनगणना के अनुसार विभिन्न राज्यों की आदिम जातियों की प्रतिशत जनसंख्या का विवरण

(जनसंख्या लाखों में)

क्रम संख्या राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र	कुल जनसंख्या	आदिम जातियों की संख्या	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	४३५.०३	१६.५०	३.८१
असम	१४९.५८	१९.२०	१२.८४
बिहार	५६३.५३	४९.३३	८.७६
गुजरात	२६६.९७	३७.३४	१३.९९
हरियाणा	१००.३७	—	—
हिमाचल प्रदेश	३४.६०	१.४२	४.०९
जम्मू और कश्मीर	४६.१७	—	—
केरल	२१३.४७	२.६९	१.२६
मध्य प्रदेश	४१६.५४	८३.८७	२०.१४
महाराष्ट्र	५०४.१२	२९.५४	५.८६
मणिपुर	१०.७३	३.३४	३१.१७
मेघालय	१०.१२	८.१४	८०.४३
कर्नाटक	२९२.९९	२.३१	०.७९
नागालैंड	५.१६	४.५८	८८.६१
उड़ीसा	२१९.४५	५०.७२	२३.११
पंजाब	१३५.५१	—	—
राजस्थान	२५७.६६	३१.२६	१२.१३
तमिलनाडु	४११.९९	३.१२	०.७६
त्रिपुरा	१५.५६	४.५१	२८.९५
उत्तर प्रदेश	८८३.४२	१.९९	०.२२
पश्चिम बंगाल	४४३.१२	२५.३३	५.७२

केन्द्र-शासित क्षेत्र [1]

केन्द्रशासित क्षेत्र	कुल जनसंख्या	आदिम जातियों की संख्या	प्रतिशत
१. अंडमान और निकोबार द्वीप	१.१५	०.१८	१५.५२
२. अरुणाचल प्रदेश	४.६८	३.६९	७९.०२
३. चण्डीगढ़	२.५७	—	—
४. दादरा और नगर हवेली	०.७४	०.६४	६६.८९
५. दिल्ली	४०.६६	—	—
६. गोआ, दमन, दीव	८.५८	०.०८	०.९३
७. लक्षद्वीप	०.३२	०.३०	९३.७५
८. पांडीचेरी	४.७२	—	—
कुल महायोग	५४,७९,४९,८०९	३,८०,१५,१६२	६.९४

१. धर्मयुग, २ दिसम्बर, १९७२।

सहायक ग्रंथों की सूची[1]

अंग्रेजी

1. The Bhil Kills — By. S. C. Verma
2. Bhils-Between Societal Self Awareness and Cultural Synthesis — By. Dr. S. L. Doshi
3. The Bhils (A Study) — By. T. B. Naik
4. Tribes and Castes (Central Provinces of India) — By. R. V. Russeel & Rai Bahadur Hira Lal
5. Folk Songs of the Bhils — By. M. P. Bhuriya

प्रमुख हिन्दी-ग्रन्थ

१. भील : भाषा, साहित्य और संस्कृति — डॉ० नेमीचद जैन
२. भीली-हिन्दी कोश — डॉ० नेमीचंद जैन
३. भीली चेतना गीत — श्री महीपाल भूरिया
४. आदिवासियों के बीच — श्रीचन्द जैन
५. भीलों की लोक-कथाएं — श्री पु० लाल मेनारिया
६. भागवत पुराण
७. श्री भागवत सुधासार
८. भारत का सांस्कृतिक इतिहास — श्री हरिदत्त वेदालंकार
९. प्राचीन भारतीय परपरा और इतिहास — श्री रागेय राघव
१०. शूद्रों का प्राचीन इतिहास — श्री रामशरण शर्मा

---

१. (क) जिला सांख्यिकी पुस्तिका, झाबुआ, १९७५ ।
(ख) झाबुआ जिले का आदिवासी जनजीवन एक अध्ययन (वार्षिक निबंध)।
(ग) झाबुआ जिले मे शिक्षा का स्तर (वार्षिक निबंध)।

पत्र-पत्रिकाएं

भीलों पर रूसी शोध-ग्रंथ	नई दुनिया, इन्दौर	३-१०-७५
'भील' शब्द की व्युत्पत्ति	" "	—
अपराधों में आगे झाबुआ	नई दुनिया	५-१२-७०
आदिवासी इलाकों में पढ़ाई	" "	१९-१-७९
म० प्र० में सबसे ज्यादा अपराध	कृषक जगत	१५-११-७१
द्रोणाचार्य और एकलव्य, ग० वा० कवीश्वर	नई दुनिया	
ये आदिवासी भील हैं या अंग्रेज	नव भारत टाइम्स, बम्बई	२२-१०-७८
अपराधों के मामले में झाबुआ सबसे आगे ?	दैनिक भास्कर, भोपाल	१२-३-८१
झाबुआ जिले में हर तीसरे दिन हत्या	नव भारत, भोपाल	३-३-८२
एकलव्यों के अंगूठे कब तक कटते रहेंगे	धर्मयुग	६-८-७१
मुख्य जनजातियां	"	२-१२-७३
फागुन में नाचते झाबुआ के भील	"	१६-३-७५
आदिवासी क्षेत्र	दीपावली विशेषांक	१९६६

प्रमुख पत्रिकाएं—विशेषांक

आदिवासी शिविर माण्डव		दिसम्बर, १९७५
श्रम साधना का सोमनाथ—झाबुआ		" १९७१
अभावों से जूझता जिला झाबुआ		अप्रैल, १९७७
मानस भारती		अक्टूबर, १९८१
'वीणा'	अमृतोत्सव अंक	

STANDARED BHILI LITERATURE
(विशिष्ट भीली साहित्य)

1. An Account of the Mewar Bhils. —By. R. Hendley
2 A Short Bhil Grammer of Jhabua State and Adjoining territories. —By Jungblut
3. A Brief Historical Sketch of Bheel tribes Inhabiting the Provinces of Khandesh. —By D.C. Graham
4. Bhil Villages of Western Udaipur. —By Morris Carstairs
5. Blood Groups of the Bhils in the Proceedings of the Indian Science congress—1950 — By Uma Basu
6. Blood Groups of the Bhils of Gujrat—1943 —D. N. Majumdar
7. Betrothal Rites amongs the Bhil of Narth Western Central India —By W. Koppers
8. Bhilo Na Geet—1915 —By K. S. Vakil
9. Bhils of central India (1890) —By A. J. Sorley
10. Bhils of Ratanmal —By S. Nath
11. Blood Groups of Balahi, Bhils, Korku and Munda Types. —By E. W. Forlane
12. Bhagwan the Supreme Deity of the Bhils. —By W. Koppers
13. Bhils (The People of India) —By H. Risley
14. Ethnography Notes on the Bhils of Central India —By C. Venkatachari
15. Essay at the Bhils —By John Malcolm
16. Line age and Local Community among the Bhils of Ratanmal —By Y. S. Nath
17. Monuments to the dead of the Bhils. —By W. Kopper
18. Magic songs of the Bhils of Jhabua State. —By Jungblut
19. Proverbs & Riddles current among the Bhils of Khandesh. —By E. Nedberg
20. Racial Affinities of the Bhils of Gujrat. —By D. Majumdar
21. Sketch of the Bheel Tribes of the Province of Khandesh. —By Graham
22. The History of the Khandesh Bhil Corps. —By A. Symcox
23. The Black Bhils of Jaisamand Lake in Rajputana —By S. C. Roy
24. The Bhils—A study. —By T. B. Nayak
25. The Bhils of Gujrat —By D. H. Majumdar
26. The Bhil Languages. —By G. Grierson

27. The Bhil of Katra Bhomat. —By Moris Carslairs
28. The Bhils of Western India —By E. Barnes
29. The Account of the Bhils —By M. Handlay
30 The Khandesh Bhil Corps —By A.H.A. Simcoy
31. Rudiments of the Bhili Language. —By C. S. Thomson
32 Wedding Rites among the Bhil of North-Western central India. —By Koppers & Jungblut
33. Bow Men of Mid India (Vol. I & II) —By W. Koppers & L. Jungbalut

□□